वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७
ISSN 2582-0656
9 772582 065005
विवेक ज्योति
वर्ष ५९ अंक १
जनवरी २०२१
रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)
SWAMI VIVEKANANDA

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

जनवरी २०२१

वर्ष ५९
अंक १

वार्षिक १६०/– **एक प्रति १७/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ८००/–
१० वर्षों के लिए – रु. १६००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ५० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए २५० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक रु. २००/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. १०००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

आवश्यक सूचना

विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में २१ जनवरी, २०२१ को विवेकानन्द जयन्ती समारोह का उद्घाटन होगा। २२ जनवरी, २०२१ से २८ जनवरी, २०२१ तक आश्रम प्रांगण में श्री रामकिंकर महाराज के शिष्य सन्त श्री मैथिलीशरण 'भाईजी' का रामचरितमानस पर प्रवचन होगा। प्रवचन के पहले और बाद में कलाकारों द्वारा भजन-संगीत होगा। २९ जनवरी, २०२१ से ०२ फरवरी, २०२१ तक वृन्दावन-धाम के पण्डित अखिलेश शास्त्रीजी का श्रीमद्भागवत पर प्रवचन होगा।

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

स्वामी विवेकानन्द की यह भव्य मूर्ति रामकृष्ण मिशन, आलो, अरुणाचलप्रदेश की है। रामकृष्ण मिशन, आलो की स्थापना २७ जुलाई, १९६६ ई. को हुई थी। यहाँ अन्य सेवाकार्यों के साथ एलकेजी से १२वीं तक की पढ़ाई होती है।

जनवरी माह के जयन्ती और त्योहार

१	कल्पतरु दिवस
५	श्रीमाँ सारदा देवी
९	स्वामी शिवानन्द
१२	राष्ट्रीय युवा दिवस
१९	स्वामी सारदानन्द
२०	गुरु गोबिन्द सिंह
२६	गणतन्त्र दिवस
२७	स्वामी तुरीयानन्द

विवेक-ज्योति के सदस्य बनाएँ

प्रिय मित्र,

युगावतार श्रीरामकृष्ण और विश्ववन्द्य आचार्य स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से विश्व-इतिहास के एक अभिनव युग का सूत्रपात हुआ है। इससे गत एक शताब्दी से भारतीय जन-जीवन की प्रत्येक विधा में एक नव-जीवन का संचार हो रहा है। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द, आदि कालजयी विभूतियों के जीवन और कार्य अल्पकालिक होते हुए भी शाश्वत प्रभावकारी एवं प्रेरक होते हैं और सहस्रों वर्षों तक कोटि-कोटि लोगों की आस्था, श्रद्धा तथा प्रेरणा के केन्द्र-बिन्दु बनकर विश्व का असीम कल्याण करते हैं। श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा नित्य उत्तरोत्तर व्यापक होती हुई, भारतवर्ष सहित सम्पूर्ण विश्ववासियों में परस्पर सद्भाव को अनुप्राणित कर रही है।

भारत की सनातन वैदिक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दू संस्कृति तथा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के सार्वजनीन उदार सन्देश का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वामीजी के जन्म-शताब्दी वर्ष १९६३ ई. से 'विवेक-ज्योति' पत्रिका को त्रैमासिक रूप में आरम्भ किया गया था, जो १९९९ से मासिक होकर गत ५७ वर्षों से निरन्तर प्रज्वलित रहकर भारत के कोने-कोने में बिखरे अपने सहस्रों प्रेमियों का हृदय आलोकित करती आ रही है। आज के संक्रमण-काल में, जब असहिष्णुता तथा कट्टरतावाद की आसुरी शक्तियाँ सुरसा के समान अपने मुख फैलाए पूरी विश्व-सभ्यता को निगल जाने के लिए आतुर हैं, इस 'युगधर्म' के प्रचार रूपी पुण्यकार्य में सहयोगी होकर इसे घर-घर पहुँचाने में क्या आप भी हमारा हाथ नहीं बँटायेंगे? आपसे हमारा हार्दिक अनुरोध है कि कम-से-कम पाँच नये सदस्यों को 'विवेक-ज्योति' परिवार में सम्मिलित कराने का संकल्प आप अवश्य लें। **— व्यवस्थापक**

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री अर्थव घई, संस्कृति अपार्टमेंट, नई दिल्ली	५,०००/-

क्रमांक	विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
६३४.	विपासा डे, डोम्बिवली (पूर्वी) (महाराष्ट्र)	पुस्कालय, कटिहार इंजीनियरिंग कॉलेज, कटिहार (बिहार)
६३५.	,, ,,	पुस्कालय, गवर्नमेंट पॉलीटेक्नीक भेड़िया रहिका, कटिहार (बिहार)
६३६.	,, ,,	पुस्कालय, डी.एस.कॉलेज, रामनगर, कटिहार (बिहार)
६३७.	,, ,,	पुस्कालय, के.बी.झा कॉलेज, भगवान चौक, कटिहार (बिहार)
६३८.	,, ,,	पुस्कालय, सूर्यदेव लॉ कॉलेज, लालकोठी रोड, कटिहार (बिहार)

विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना

मनुष्य का उत्थान केवल सकारात्मक विचारों के प्रसार से करना होगा। – स्वामी विवेकानन्द

❖ क्या आप स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के भारत के नव-निर्माण में योगदान करना चाहते हैं?

❖ क्या आप अनुभव करते हैं कि भारत की कालजयी आध्यात्मिक विरासत, नैतिक आदर्श और महान संस्कृति की युवकों को आवश्यकता है?

✓ यदि हाँ, तो आइए! हमारे भारत के नवनिहाल, भारत के गौरव छात्र-छात्राओं के चारित्रिक-निर्माण और प्रबुद्ध नागरिक बनने में सहायक 'विवेक-ज्योति' को प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने में सहयोग कीजिए। आप प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने वाली हमारी इस योजना में सहयोग कर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं। आपका प्रयास हमारे इस महान योजना में सहायक होगा, हम आपके सहयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं –

✍ १. 'विवेक-ज्योति' को विशेषकर भारत के स्कूल, कॉलेज, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों द्वारा युवकों में प्रचारित करने का लक्ष्य है।

✍ २. एक पुस्तकालय हेतु मात्र १८००/- रुपये सहयोग करें, इस योजना में सहयोग-कर्ता के द्वारा सूचित किए गए सामुदायिक ग्रन्थालय, या अन्य पुस्तकालय में १० वर्षों तक 'विवेक-ज्योति' प्रेषित की जायेगी।

✍ ३. यदि सहयोग-कर्ता पुस्तकालय का नाम चयन नहीं कर सकते हैं, तो हम उनकी ओर से पुस्तकालय का चयन कर देंगे। दाता का नाम पुस्तकालय के साथ 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जाएगा। यह योजना केवल भारतीय पुस्तकालयों के लिये है।

❖ आप अपनी सहयोग-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर या एट पार चेक 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवाकर पत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेज दें, जिसमें 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' हेतु लिखा हो। आप अपनी सहयोग-राशि निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कर सकते हैं। आप इसकी सूचना ई-मेल, फोन और एस. एम.एस. द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124, **IFSC CODE :** CBIN0280804

पता – **व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,**

रायपुर - 492001 (छत्तीसगढ़), दूरभाष – 09827197535, 0771-2225269, 4036959

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com, वेबसाइट : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

'विवेक-ज्योति' पत्रिका स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर १९६३ ई. में आरम्भ की गई थी। तबसे यह पत्रिका निरन्तर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारों के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज को सदाचार, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन यापन में सहायता करती चली आ रही है। यह पत्रिका सदा नियमित और सस्ती प्रकाशित होती रहे, इसके लिये विवेक-ज्योति के स्थायी कोष में उदारतापूर्वक दान देकर सहयोग करें। आप अपनी दान-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर, ऐट पार चेक या सीधे बैंक के खाते में उपरोक्त निर्देशानुसार भेज सकते हैं। प्राप्त दान-राशि (न्यूनतम रु. १०००/-) सधन्यवाद सूचित की जाएगी और दानदाता का नाम भी पत्रिका में प्रकाशित होगा। रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान आयकर अधिनियम-१९६१, धारा-८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है।

वर्ष ५९ जनवरी २०२१ अंक १

माँ सारदा वन्दना

न याचे समृद्धिं न चानित्यमायु-
र्न रूपं न धर्मं यशो वा समित्रम्।
अधर्मं न कार्यं न दैन्यं दिवं वा
मतिर्मे तु भूयात् पदे शारदायाः ।।१।।
स्वदेशे विदेशे भव त्वं दयार्द्रा
त्वनीचे सुनीचे समाना विधात्री।
जले वा भुवि त्वं प्रजानां शरण्या
नमस्ते नमस्ते पदे शारदायाः ।।२।।
अजस्रं यथा ते भजाम्यंघ्रि युग्मं
यथा नाम तेऽहं जपामि सचिन्त्यः।
अपूर्वान् गुणांस्ते स्मरामि प्रहृष्ट-
स्तथा सारदा त्वं विधेहि प्रसन्ना।।३।।

– हे मातः सारदे ! मैं समृद्धि, अनित्य आयु, रूप, धर्म, यश, मित्र, अधर्म, कार्य, दैन्य या स्वर्ग कुछ भी नहीं चाहता। केवल प्रार्थना करता हूँ कि तुम्हारे ही चरण-कमलों में मेरी बुद्धि स्थिर रहे।।१।। तुम्हारी करुणा-धारा देश-विदेश सर्वत्र समान भाव से प्रवाहित हो रही है। तुम्हारी दृष्टि ऊँच-नीच सबमें समान है। जल-थल में सर्वत्र तुम शरणागतों को अभय प्रदान करते हुए आश्रय देती हो। इसलिये हे जननी सारदे! तुम्हारे चरण-कमलों में बार-बार प्रणाम।।२।। हे जननी ! मैं निरन्तर तुम्हारे चरणों का ध्यान कर सकूँ, चिन्तन के साथ तुम्हारा नाम-जप कर सकूँ, तेरे अलौकिक गुणों का सानन्द स्मरण कर सकूँ, तुम प्रसन्नतापूर्वक मुझे यही वर दो, यही मेरी एकमात्र प्रार्थना है।।३।।

पुरखों की थाती

जलमभ्यासयोगेन शैलानां कुरुते क्षयम्।
कर्कशानां मुदुस्पर्शं किमभ्यासो न साधयेत्।।७१०।।

– मृदु स्पर्शवाला जल भी अभ्यास द्वारा कठोर पर्वतों का क्षय कर डालता है, अभ्यास के द्वारा भला क्या सम्भव नहीं है!

अभ्यासस्य प्रसादेन वायोरपि जयो भवेत्।
अणिमाद्यष्टसिद्धीनां भाजनं भवति ध्रुवम्।।७११।।

– निरन्तर अभ्यास के फलस्वरूप वायु तक को वशीभूत किया जा सकता है। अभ्यास के बल पर व्यक्ति में निश्चित रूप से अणिमा आदि (महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व तथा वशित्व) आठ सिद्धियाँ भी प्राप्त करने की योग्यता आ जाती है।

अभ्यासेन कटु द्रव्यं भवति अभिमतं मुने।
अन्यस्मै रोचते निम्बस्त्वन्यमै मधु रोचते।।७१२।।

– निरन्तर अभ्यास के द्वारा कड़वे पदार्थ में भी रस मिलने लगता है, इस प्रकार किसी को नीम का स्वाद पसन्द है, तो किसी को मधु रुचिकर लगता है।

युवैव धर्मशीलः स्यात् अनित्यं खलु जीवितम्।
को हि जानाति कस्याद्य मृत्युकालो भविष्यति।।७१३।।

– यह जीवन अनित्य है और कोई भी नहीं जानता कि आज किसका मृत्युकाल आ पहुँचा है, अतः युवावस्था में ही व्यक्ति को धर्म की साधना कर लेनी चाहिये। (योग-वाशिष्ठ)

श्रीमाँ सारदा के स्नेहाशीष की छत्रछाया में स्वामी विवेकानन्द का अभिनव सेवा-महायज्ञ

भगवान श्रीरामकृष्ण देव के परम प्रिय शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने अपने गुरुदेव की महासमाधि के बाद वर्षों तक देश-विदेश का भ्रमण किया। परिभ्रमण-काल में वे भारत के विभिन्न राज्यों की संस्कृति से परिचित तो हुए ही, लेकिन उन्होंने तत्कालीन भारत की दुर्दशा और जनता के दुखों की अपने हृदय के अन्तस्तल में अनुभूति भी की। भारतवासियों को इस दुख से मुक्त करने की उन्होंने

एक योजना बनाई और इस सेवा-योजना के सफल संचालन हेतु अर्थार्जन करने के लिये उन्होंने पश्चिम देश अमेरिका जाने का विचार किया।

श्रीमाँ की मूर्ति, जयरामवाटी

संशय-राक्षसनाशिनी माँ

यज्ञ की निर्विघ्न सफलता हेतु आदि शक्ति का आवाहन किया जाता है। क्योंकि यज्ञ और रण में विघ्न आते ही हैं। विघ्नों का निवारण आदिशक्ति करती हैं। स्वामी विवेकानन्द के अभिनव यज्ञ में सबसे बड़ा विघ्न संशय-राक्षस था कि अमेरिका जाएँ या नहीं। भारतवासियों के हितार्थ विदेश-गमन में सबसे बड़ी बाधा स्वामीजी का दुविधायुक्त मन था। सब लोग शिकागो में आयोजित विश्वधर्म-सम्मेलन में भाग लेने हेतु उन्हें प्रेरित कर रहे थे, सारी व्यवस्थाएँ हो गयी थीं, लेकिन स्वयं स्वामीजी के मन में संशय चल रहा था कि जाऊँ या नहीं जाऊँ, क्या करूँ? अन्त में संशयमुक्त होने के लिये स्वामीजी ने श्रीमाँ को इस आशय से पत्र लिखा कि वे जैसा कहेगीं, वैसा ही करूँगा। क्योंकि श्रीमाँ संशयदैत्य-विनाशिनी जो हैं। क्या जगदम्बा की कृपा को प्राप्त करके भी किसी में कुछ संशय रह सकता है! संशयी को चित्त में शान्ति नहीं मिलती। माँ अपने प्रिय पुत्र को अशान्त, असुरक्षित कैसे देख सकती हैं! बहुत दिनों बाद अपने प्रिय पुत्र का पत्र पाकर माँ अत्यन्त प्रसन्न हुईं। कुछ दिन बाद उन्होंने अपना आशीर्वाद देते हुए स्वामीजी को पत्र लिखा, जिसमें उनके अमेरिका जाने की अनुमति थी। पत्र पाकर स्वामीजी आनन्दित हो जाते हैं। वे सोल्लास कहते हैं – ''अहा! अब सब ठीक हुआ, माँ की इच्छा है कि मैं जाऊँ।''[१]

माँ का आशीर्वाद पाकर उन्होंने सोल्लास अमेरिका हेतु प्रस्थान किया और वहाँ कई वर्षों तक रहकर उन्होंने शाश्वत हिन्दू धर्म का प्रचार किया। वहाँ की व्यवस्था से उन्होंने बहुत कुछ सीखा और भारत आकर प्राचीन आस्था और अभिनव व्यवस्था के साथ भारत में सेवा-यज्ञ प्रारम्भ करने का निर्णय लिया। स्वामी विवेकानन्द के इस अभिनव सेवायज्ञ को श्रीरामकृष्ण के अनुयाई या उनके सभी गुरुभाइयों ने शीघ्र ही नहीं स्वीकार कर लिया था। कुछ लोगों को लगता था कि यह भाव श्रीरामकृष्ण देव का नहीं है। ऐसा करना गुरुदेव के आदर्शों के अनुरूप नहीं होगा। इसमें श्रीरामकृष्ण के गृहस्थ शिष्य रामचन्द्र दत्त और श्रीरामकृष्ण के शिष्य स्वामी योगानन्द जी महाराज थे।

बागबाजार में बलराम बसु के भवन में 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना की घोषणा हुई। अन्त में योगानन्दजी ने स्वामीजी से पूछा था – ''तुम्हारा यह सब कार्य विदेशी ढंग पर हो रहा है। श्रीरामकृष्ण का उपदेश क्या ऐसा ही था?

स्वामीजी ने कहा – तुमने कैसे जाना कि यह सब श्रीरामकृष्ण के भावानुसार नहीं है। तुम क्या अनन्त भावमय गुरुदेव को अपनी संकीर्ण परिधि में आबद्ध करना चाहते हो? मैं उस परिधि को तोड़कर उनके भाव को जगत भर में फैलाऊँगा। ...त्रिजगत के लोगों को उनकी भावराशि देने के निमित्त ही हमारा जन्म हुआ है।''[२]

स्वामी विवेकानन्द जी ने इन सबको यथामति-युक्ति समझाया और रामकृष्ण मिशन की स्थापना कर अपने इस महान सेवा-यज्ञ को आरम्भ किया। मेरा उद्देश्य इस विषय के

विस्तार में जाना नहीं है, बल्कि यह कहना है कि तत्कालीन शिक्षित लोग जब इस अभिनव सेवा-यज्ञ को सुनकर भ्रमित हो गए, तब भ्रमहारिणी संशय-नाशिनी श्रीमाँ सारदा ने कालान्तर में सबके भ्रम को दूर किया और स्वामीजी के इस अखण्ड महायज्ञ को सम्पूर्णता की ओर अग्रसर करने में दिशा प्रदान की थी।

रामकृष्ण मिशन के किसी भी निर्णय का अन्तिम शब्द श्रीरामकृष्ण की लीलासहचरी श्रीमाँ सारदा का होता था। तत्कालीन कलकत्ता के शिक्षित रामचन्द्र दत्त और स्वामी योगानन्द जब भ्रमित हो गये, उस समय जग-जननी माँ सारदा ने अपनी दूरदृष्टि का परिचय देते हुए समय-समय पर आगत इन संशयों का समाधान किया था और सबकी शंका को निर्मूल किया था।

श्रीमाँ की जीवनी के अप्रतिम रचनाकार स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज लिखते हैं – ''श्रीमाँ प्रत्यक्ष रूप से उनके संघ-संचालन में न रहने पर भी परोक्ष रूप से परामर्श देकर, आध्यात्मिक प्रभाव फैलाकर तथा स्नेह का बन्धन दृढ़ करती हुई संघ की गति को नियन्त्रित करती थीं। ऐसे स्थलों में उसके विभिन्न अंगों के साथ उनका सम्बन्ध मनन करने योग्य है। यद्यपि इन लोगों में अनेक उनके, श्रीरामकृष्ण के अथवा उनकी सन्तानों के शिष्य थे, तो भी कार्यक्षेत्र में माता-पुत्र का यह सम्बन्ध जिस प्रकार होता था, वह हमारे लिये शिक्षाप्रद है।''[३]

स्वामी विवेकानन्द के अभिनव सेवा-यज्ञ के अनुमोदन में श्रीमाँ के यत्र-तत्र प्राप्त कुछ विचारों का उल्लेख यहाँ अपेक्षित है। स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज लिखते हैं – ''इसके एक वर्ष बाद एक सन्तान ने श्रीमाँ से निवेदन किया – 'कोई-कोई कहते हैं कि सेवाश्रम या अस्पताल चलाना, पुस्तकें बेचना, हिसाब रखना आदि काम साधुओं के लिये ठीक नहीं है; क्योंकि ठाकुर ने यह सब काम नहीं किया। काम यदि करना हो, तो पूजा, जप, ध्यान, कीर्तन आदि ही करना उचित है, दूसरे सभी काम विषय-चिन्ता लाकर साधु को ईश्वर से विमुख कर देते हैं।' श्रीमाँ ने सब सुनकर दृढ़ता से कहा, 'काम न करेंगे, तो भला रात-दिन रहेंगे कैसे? चौबीस घण्टे क्या जप-ध्यान किया जा सकता है? ठाकुर की बात करते हैं, उनकी बात निराली है। फिर उनके खाने-पीने की व्यवस्था मथुर बाबू करते थे। यहाँ एक काम लेकर हो, इसलिये खाना मिल रहा है, नहीं तो मुट्ठीभर अन्न के लिये कहाँ दर-दर घुमते रहोगे?... ठाकुर जैसा चलाते हैं, वैसे ही चलना। मठ इसी प्रकार चलेगा। यह जो न कर सकेंगे, वे चले जाएँगे।''[४]

सेवा-कार्य न करने के दुष्परिणाम और श्रीमाँ की चेतावनी

श्रीमाँ जानती थीं कि कार्य नहीं करने से मन ठीक नहीं रहता और मन ठीक नहीं रहने से साधना भी ठीक नहीं होगी। इसलिए वे एक सेवक के सम्बन्ध में कहती हैं – ''देखो तो गुरुजन की बात! काम करने की उसकी एकदम इच्छा नहीं है। काम-काज न करने से जी अच्छा थोड़े ही रहता है? चौबीस घण्टे क्या ध्यान-चिन्तन किया जा सकता है? इसलिये काम-काज लेकर रहना चाहिए। उससे मन अच्छा रहता है।''[५]

आश्रम में रहकर सेवा करने से कल्याण होगा

एक बार एक सेवक स्वामी शिवानन्द जी महाराज की आज्ञा के बिना काशी चले गये। यद्यपि कई लोगों ने उन्हें आज्ञा का उल्लंघन नहीं करने का परामर्श दिया था, लेकिन अपने साथियों के अनुरोध से वे चले गये। स्वामी शिवानन्द जी महाराज रुष्ट हुए, लेकिन जब श्रीमाँ को ज्ञात हुआ, तो वे अपनी सन्तान के दुख से दुखित हो गयीं। उन्होंने अद्वैत आश्रम, वाराणसी के अध्यक्ष को पत्र लिखा कि वे उसे आश्रम में रहने दे। उसके बाद श्रीमाँ ने उस सेवक को भी पत्र लिखा – ''मैंने तुम्हारी बात चन्द्र (अद्वैत आश्रम, वाराणसी) को लिख दी है और तुम्हें भी लिख रही हूँ कि जब काशी पहुँच चुके हो, तब ठाकुर के आश्रम में रहकर आजीवन चन्द्र की तथा साधुओं की सेवा यदि कर सको, तो सब प्रकार से तुम्हारा कल्याण होगा।''

इस प्रकार हम देखते हैं, समय-समय पर श्रीमाँ ने स्वामीजी के इस अभिनव यज्ञ के प्रति अपनी स्पष्ट अभिव्यक्ति दी और सेवकों में आगत शंकाओं-विसंगतियों को दूर कर इस सेवा-यज्ञ की रक्षा की। स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज लिखते हैं – ''... जब तक वे संसर में रहीं, तब तक मठ को सुप्रतिष्ठित करने तथा उसे ठीक से चलाने का प्रयत्न सदा करती रहीं।''[६] ○○○

सन्दर्भ सूत्र – १. श्रीमाँ सारदा देवी, पृष्ठ-२७४, **२.** विवेकानन्द साहित्य ६/४७, **३.** श्रीमाँ सारदा देवी, पृष्ठ-२७३, **४.** वही, पृ. २६१, **५.** वही, पृ. २६१, **६.** वही, पृ. २५९.

स्नेहदायिनी, अभयदायिनी, गुरु : माँ सारदा

स्वामी निर्विकल्पानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, हरिद्वार, उत्तराखण्ड

आइए! श्रीमाँ सारदा और उनके रूप को अपनी-अपनी मानसवेदिकाओं में स्थापित कर, श्रीमाँ का मानस-पूजन, स्मरण-मनन करते हुए अपने-अपने व्यक्तिगत जीवन को समृद्ध बनाने का प्रयास करें। मेरा छोटा-सा प्रश्न माँ क्या हैं? हम जानते हैं कि माँ को समझना इतना आसान नहीं है। मुँह से 'माँ! माँ! माँ! माँ' हम भले ही कह लें, पर वास्तव में माँ कौन हैं, यह जानना सरल नहीं है। जहाँ देवता लोग भी माँ को नहीं जान पाये, नहीं समझ पाये, तो हमलोगों की क्या बात है ! मार्कण्डेय पुराण का एक अंश है – 'दुर्गा सप्तशती' या चण्डी। मार्कण्डेय ऋषि उसमें बड़ा सुन्दर एक घटना का वर्णन करते हैं।

एक बार पुन: देवासुर संग्राम हुआ। इस बार असुर अति शक्तिशाली, समृद्धशाली और तनिक अधिक शक्तिसम्पन्न था। उसका नाम था महिषासुर। देवता पराजित होते हैं, असुरों की विजय होती है। देवतागण घबराकर भगवान विष्णु के पास आते हैं। अतीत में बहुत बार विष्णु ने देवताओं को बचाया था, किन्तु इस बार विष्णु भगवान देवताओं को नहीं बचा सके। बात आगे बढ़ती है। विष्णु भगवान कहते हैं, देखो इस बार मैं नहीं बचा पाऊँगा, क्योंकि महिषासुर साक्षात् शिवजी की शक्ति से शक्तिशाली है। तुम लोग शिवजी के पास चलो! मैं भी चलता हूँ। ब्रह्माजी के नेतृत्व में सभी देवता शिवजी के पास जाते हैं। शिवजी ध्यान मुद्रा में बैठे हैं। शिवजी देवताओं से कहते हैं – तुमलोगों के आगमन का उद्देश्य मैं जानता हूँ। थोड़ी प्रतीक्षा करो। शिवजी कहते हैं, मैंने ही भक्त को आशीर्वाद दिया है कि एकमात्र मातृशक्ति के अतिरिक्त कोई भी उसे मार नहीं पायेगा। कोई भी उसकी मृत्यु का निमित्त नहीं बनेगा। देवों ने कहा – तब हम लोग क्या करें? शिवजी ने कहा – तुमलोग एक काम करो। तुमलोग देवपुरा में चले जाओ। देवपुरा अर्थात् आज का जो गढ़वाल है। उत्तराखण्ड दो भागों में विभाजित है – कुमायू और गढ़वाल। गढ़वाल का पुराना नाम है, देवपुरा – देवताओं का पुर। वहाँ मेरा एक शिष्य है कात्यायन। ऋषि कात्यायन के आश्रम में तुमलोग निश्चिन्त होकर रहो। समय आने पर महिषासुर का वध होगा, तब तुम लोग फिर खोये हुए अपने स्वर्ग-राज्य को प्राप्त करने में सक्षम होगे। ब्रह्माजी के नेतृत्व में देवगण कात्यायन ऋषि के आश्रम में जाते हैं। कात्यायन ऋषि सबका स्वागत करते हैं – आइए, आइए! विराजिए! किन्तु इन्द्र के मन में डर है। इन्द्र कहते हैं – कात्यायन ! कहीं यहाँ महिषासुर तो नहीं आ जायेगा? कात्यायन ऋषि ने कहा – आप निश्चिन्त रहिए। यहाँ असुर तो क्या मानव, दानव, गन्धर्व, किन्नर कोई भी नहीं आ पाएगा। आप लोग तो प्रेरित हैं, इसलिए आ गए। नहीं तो, आप लोग भी यहाँ नहीं आ पाते। किन्तु प्रश्न यह नहीं है कि महिषासुर यहाँ आ पायेगा कि नहीं, प्रश्न यह है कि अपने-अपने राज्य को खोकर कब तक आपलोग यहाँ दिन गिनोगे?

श्रीमाँ का मन्दिर, बेलूड़ मठ

महर्षि कात्यायन उपाय बतलाते हैं – हे देवगण ! क्यों न आपलोग उस अघटन-घटनपटीयसी आद्याशक्ति, महामाया की आराधना करें? देवताओं को यह बात अच्छी लगी। ब्रह्माजी के नेतृत्व में देवता उस विख्यात स्तव का गान करने लगे – "त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषटकार: स्वरात्मिका!..." इसमें देवी का बहुत सुन्दर वर्णन है। देवपुरा, पटवारे के आसपास लोग दिखाते हैं कि यही कात्यायन का आश्रम है। अभी भी वहाँ कात्यायन के आश्रम का खण्हर है। वहाँ बगल में एक पहाड़ी झरना था। एक पहाड़ी मातृमूर्ति झरना से स्नान करके एक मिट्टी के पात्र में जल भरकर अपने कमर में रखकर आती है और कहती है

– क्यों वत्सगण ! तुम इतने विचलित क्यों दिखते हो? क्या हो गया तुमलोगों को? यह देखकर इन्द्र बहुत कुपित होते हैं। वे कहते हैं, बुलाओ अभी कात्यायन को। कात्यायन तो कहते थे कि यहाँ पर कोई नहीं आ पाएगा, दानव, मानव, किन्नर, गंधर्व, महिषासुर का तो प्रश्न ही नहीं है। किन्तु यहाँ तो अति साधारण पहाड़ की रहनेवाली एक आदिवासी रमणी आ गई! तब वह मातृमूर्ति कहती है – अच्छा नहीं चाहिए तुम को? ठीक है, ठीक है, मैं जाती हूँ, कहकर अन्तर्धान हो गयी। मातृशक्ति के अन्तर्धान से इन्द्र आश्चर्यचकित रह गये। कहाँ गयी? कात्यायन ऋषि दौड़ते हुए आए। सब सुनकर उन्होंने देवताओं को धिक्कारते हुए कहा – यही आप लोगों में दैवी शक्ति है कि जिनकी अब तक आराधना की, उनको ही पहचान नहीं पाये, जो एकमात्र आपलोगों की आश्रयदात्री हैं ! धिक्कार है ! धिक्कार है !

देवों ने पूछा – अब क्या उपाय है? तत्पश्चात् कात्यायन ऋषि अपने यज्ञस्थल में बैठकर आहुति देने लगे। तब यज्ञकुण्ड से देवी प्रकट हुईं। चूँकि कात्यायन ऋषि के यज्ञकुण्ड से देवी प्रादुर्भूत हुई थीं, इसलिये देवी दुर्गा का दूसरा नाम है कात्यायनी अर्थात् कात्यायन की कन्या। जिस दिन माँ कात्यायनी का प्रदुर्भाव हुआ था, उस दिन को कहा जाता है महालया। दुर्गा-पूजा के प्रारम्भ होने के पहले दिन महालया होती है। यानि देवीपक्ष का प्रारम्भ और पितृपक्ष का समापन होता है ! महालय का अर्थ है – आलय अर्थात् आश्रय, महान आलय महालय। महान क्यों? क्योंकि इसी दिन देवताओं को आश्रय मिला, इसलिए महान है। तिथि स्त्रीलिंग वाचक है। इसलिए महालय नहीं, महालया तिथि हुई।

अब अपने प्रसंग पर आते हैं, जिसमें श्रीमाँ को जानने की, पहचानने की, माँ को समझने की, चर्चा चल रही थी। जब देवता लोग असमर्थ रह गये, तो वहाँ हमारी आपकी क्या बात है? क्या हम माँ को समझ पायेंगे? क्या हम श्रीमाँ को बिना समझे ही चले जायँ? नहीं, इसका उपाय है – मातृ-आराधना। वैसे मातृ-आराधना हमलोग नित्य अपनी-अपनी सामर्थ्यनुसार करते ही हैं, किन्तु तीन प्रसिद्ध-विख्यात संन्यासियों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से, श्रीमाँ को जैसा देखा, वैसा पाया, वैसा एक कॅनव्हॉस के ऊपर पेंट की। उन लोगों की मनन-प्रणाली का अनुसरण करते हुए, हम अपनी इस चर्चा को आगे बढ़ाने का प्रयास करते हैं। तीनों के माँ के प्रति विख्यात प्रणाम मन्त्र हैं, उसको देखते हैं। सबसे पहले प्रणाम मंत्र है अभेदान्दजी का। उन्होंने माँ को किस रूप में देखा? वे लिखते हैं –

स्नेहेन बध्नासि मनोऽस्मदीयं
दोषान् शेषान् सगुणीकरोषि।
अहेतुना नो दयसे सदोषान्,
स्वाङ्के गृहीत्वा यदिदं विचित्रम्।।

हे मात: ! अहैतुक, बिना कारण के, स्नेह से सबको बाँध कर रखी हो। श्रीमाँ के चरित्र के तीन आयाम हैं। जैसे ये लाइट मेरे पास है, बहुत दूर जो लोग हैं, वे इससे बहुत अधिक लाभान्वित नहीं होंगे। गाँव में कहीं एक बत्ती जल रही है। दूर लोग समझ जायेंगे कि यह बिजली बन्द नहीं है, बिजली है उनको इससे अधिक लाभ नहीं होगा, पर वे लोग भी प्रकाश देख रहे हैं। किन्तु जो लोग निकट आये हैं, उनको बिजली के दूसरे आयाम प्रकाश का लाभ मिलेगा। यदि इससे भी अधिक सान्निध्य प्राप्त करेंगे, तो बिजली के तीसरे आयाम ताप या उत्ताप का अनुभव करेंगे। हम यहाँ अस्तित्व, प्रकाश और ताप ! इन तीनों को लेकर ही माँ के चरित्र का अनुध्यान, अनुचिन्तन करेंगे !

अध्यात्म रामायण में वसिष्ठजी रामचन्द्रजी को कहते हैं – **तत् अनुचिन्तनं तदनुध्यानं तस्मिन्नेव अनुस्यूयतात** ! हे रामचन्द्र ! आप यह जानना चाह रहे हैं कि १४ वर्ष का वनवास कैसे आप यापन करें? लीला में आपने मेरा शिष्यत्व ग्रहण किया है और लीला में मैं भी आपका गुरु बना, इसलिए कुछ तो कहना पड़ेगा। अत: तत् अनुचिन्तनम् – उस ईश्वर का चिन्तन, अनुचिन्तन करना और उसका अनुध्यान करना, उस में डूब जाना, उस के अनुसार अपने आप को ढाल लेना, यही एकमात्र उपाय है। इससे आपको १४ वर्ष का वनवास बद्ध जैसे नहीं लगेगा, आप मुक्तावस्था जैसे ही रहेंगे।

माँ का पहला रूप : स्नेहदायिनी

श्रीमाँ के चरित्र का प्रथम आयाम है – 'मातृत्व रूप' और उनके 'स्नेहमय रूप' का अनुचिन्तन करना। 'स्नेहेन बध्नासि' हम प्रतिदिन पाठ करते हैं, इसमें माँ के स्नेहदायिनी, अभयप्रदात्री रूप को दर्शाने का प्रयास किया गया है। स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज को महितोष महाराज, जो अभी जर्मनी में हैं, भागवत सुनाने जाया करते थे। एक दिन एक भक्त

आये, तो उनको भी अनुमति दी गयी। उन्हें कहा गया कि २ मिनट से अधिक नहीं, यह हमारा व्यक्तिगत समय है, नहीं तो बाद में आना! उन्होंने कहा, नहीं महाराज, आज तो मैं चला जाऊँगा। इसलिए आप से मैं कहने आया हूँ। मैं अब और कुछ नहीं, केवल माँ सारदा को ही मानता हूँ, माँ सारदा को ही मैं अपने माँ के रूप में मानता हूँ। माँ सारदा, सारदा, बस सारदा!

स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज रसिक-राज थे। वे हँसते हँसते कहते हैं, माँ सारदा नहीं, तुम बोलो, सारदा देवी! कैसे मूर्ख हो तुम ! कैसे बात कर रहे हो? कोई अपनी माँ का नाम लेता है क्या? आप अपनी माँ का नाम लेकर माँ को बुलायेंगे? आप का बच्चा क्या आप का नाम लेकर बुलाता है या माँ कहकर बुलाता है? कितना सूक्ष्म परिचय करवाते हैं? देवी बोलो तुम! जैसे सरस्वती देवी, काली देवी, दुर्गा देवी, उनका नाम लिया जाता है, पर कोई अपनी माँ का नाम कैसे लेगा? ये माँ का प्रथम परिचय है। माँ का चरित्र किस रूप में? स्नेहमयी, स्नेहदायिनी, अभयप्रदात्री! के रूप में।

माँ के जीवन की यह घटना है। माँ जब जयरामबाटी में रहती थीं, तो सब लोग वहाँ जाते थे और कहते थे, माँ बहुत सेवा करती हैं। माँ भी सबके खाने-पीने, रहने का ठीक-ठीक ध्यान रखतीं, जैसे एक माँ अपने पुत्र का रखती है।

माँ सन्तान की वैसी सेवा करती थीं, जैसी आशा एक सन्तान अपनी माँ से करती है। ऐसा था माँ का मातृभाव! माँ के मातृभाव की एक घटना उल्लेखनीय है ! गोविन्द नामक एक लड़का गोशाला में काम करता था। माँ के पास चार गायें थीं। माँ ने उनका बहुत मधुर नाम रखा था। नाम सुनकर आपको हँसी आयेगी। एक गाय का नाम था महन्त। क्यों? क्योंकि यदि दूसरी गायें इधर-उधर दूसरे झुण्ड में चली जाती थीं, तो वह सिंग मार-मार कर उसे अपने ही झुण्ड में लाती थी। माँ ने ऐसा करते स्वयं देखा था। इसलिये माँ कहती थीं, यह महन्त जैसी है।

माँ कहती थीं, जब मैं पश्चिम देश में गयी थी, हरिद्वार में तो महन्त कह रहा है यह मेरे आश्रम का है और वह मेरे आश्रम का नहीं है। यह मेरे आखाड़ा का है और वह मेरे आखाड़ा का नहीं है। इसी प्रकार महन्त गाय सबको अपने झुण्ड में रखती थी। दूसरे गाय का नाम संन्यासी था। क्यों? उसकी खान-पान में कुछ रुचि नहीं थी। तीसरी का नाम था धवली। वह कभी कीचड़ में बैठती ही नहीं थी। कीचड़ हो या गोबर हो, जब तक साफ न किया जाय, धवली खड़ी रहती थी। चौथी गाय का नाम था विचित्रा। वह कभी यहाँ चली आती, कभी घूमने चली जाती, कभी चिल्लाती, इसलिये माँ उसे विचित्रा कहती थीं।

गोविन्द नामक बालक, जो गोशाला में काम करता था, उसको घाव हो गया और उसके पूरे शरीर में वह घाव फैल गया। माँ एक-दो दिन नहीं, सात-सात दिन तक नीम पत्ता उबालकर घाव को साफ कर रही हैं। गोविन्द रो रहा है। वह कहता है, मेरी गर्भधारिणी माँ भी कभी ऐसी सेवा नहीं की। माँ कहती हैं, माँ तो माँ ही है न ! तुम तुलना क्यों कर रहो हो? मैं क्या तुम्हारी गर्भधारिणी से कम हूँ?

१९१६ में माँ पुराने मकान से नये मकान में आईं, जहाँ मातृमन्दिर बना है, वहाँ नौ साल माँ थीं। आठ साल तक माँ पुराने मकान में थी।

१९१६ गर्मी का समय है। चैत्र-वैसाख का मास, दोपहर एक-डेढ़ बजे का समय होगा। एक डमरू बजने की आवाज आयी। पूरा जयरामबाटी गाँव दोपहर की निद्रा में सोया हुआ है। डमरू की आवाज सुनते ही माँ बाहर निकल आती हैं, देखती हैं कि एक सपेरा मदारी आया हुआ है। वह सिर में पगड़ी बाँधे और उसके कँधे में बाँस है। उसमें सामने तीन टोकरी और पीछे तीन टोकरी मिट्टी से लिपी हुई लटक रही है। उसका छोटा एक नाती, कडसन डमरू बजाते-बजाते आ रहा है। उसके रुखे-सुखे बाल हैं। उसका दुबला-पतला शरीर देखकर ही भूख, कष्ट की दयनीय अवस्था की झलक मिलती है। उसे देखकर माँ कहती हैं – आओ बेटा, यहाँ आओ ! यहाँ तुम अपना कसरत दिखाओ। माँ कसरत शब्द का प्रयोग करती हैं। तुम अपने साँप का कसरत दिखाओ। मैं अभी दूसरे मोहल्लों से लोगों को बुलाकर लाती हूँ। यह कहकर इतनी गर्मी में अन्य मोहल्लों से बच्चों को, सबको बुलाकर लाती हैं। इस नये मकान के आँगन में बहुत गर्मी है कि साँप भी अपने फन उठाकर फिर नीचे हो जा रहे हैं। गर्मी में साँपों की भी हालत खराब है। माँ कहती हैं, बस-बस बहुत कष्ट हो रहा है, अब और कष्ट मत दो। लो जरा इस टोकरी में पानी का छिड़काव कर दो, मिट्टी से लिपी हुयी है, ठण्डा हो जायेगा। बेटा ! तुम एक काम करो, पुण्यपुकुर में जाकर स्नान कर आओ और अपने इस पोते को भी स्नान कराओ। उसे एक नया अँगोछा और नयी धोती देती हैं। अपने भतीजे भूदेव की एक धोती देकर

माँ उस बच्चे को कहती हैं, जाओ नहाकर आओ। साथ में लगाने के लिये सरसों का तेल देती हैं। कहती हैं, कितने दिन हो गये, रूखे-सुखे बालों पर तेल नहीं लगाया। जाओ बेटा, अच्छी तरह से नहाकर आओ। वे सब नहाने चले गये। इस बीच माँ हलुआ बनाती हैं। वे नहाकर आते हैं। उन लोगों के आने के पहले ही बच्चों को थोड़ा हलुआ और मूड़ी देती हैं। माँ मदारी और उसके नाती को बैठाकर केले के पत्ते में देकर उन्हें स्वयं खिला रही हैं। कहती हैं, बेटा ! और खाओ, फिर हलुआ देती हैं। हलुआ खत्म हो गया, फिर गुड़ के साथ और मूड़ी खाओ, इस तरह बच्चे बेचारे खा रहे हैं। कितने दिनों की भूख है ! खाना खिलाने के बाद माँ कह रही हैं, जाओ बेटा फिर कभी ऐसा दुर्दिन हो, तो यहाँ आ जाना। मदारी से रहा न गया, मदारी रोने लगा, रोते-रोते कहता है, माँ तुम कौन लगती हो हमारी? माँ कहती हैं – बेटा ! तुम्हारे प्रश्न का उत्तर तो तुमने ही दे दिया है, माँ लगती हूँ। तुमने मुझे माँ कहकर बुलाया है न। नलिनी दीदी चिल्लाकर कह रही हैं, माँ, मदारी के जात-पात का कुछ ठीक नहीं है, उसको तुम अपने हाथ से खिला रही हो।

माँ कहती हैं, देखो, नलिनी कितने बार मैं कह चुकी हूँ, जो एक बार मुझे माँ संबोधन कर ले, उसके जात-पात के बारे में मत पूछना। नलिनी कहती है, तुमको यह सब क्या पता ! माँ उसे दो रुपये पुरस्कार देती है और कहती हैं जाओ बेटा, जाओ ! फिर से आना। वह दो कदम जाता है, रोता है, फिर पीछे देखता है। दो कदम जाता है, रोता है, फिर पीछे देखता है। बच्चा भी माँ की ओर देखता है। माँ पीछे से पकड़कर कहती हैं, जाओ बेटा ! ठुड्डी चुमती हैं। यह है माँ का स्नेहमय रूप ! 'स्नेहेन बध्नासि मनोऽस्मदीयं दोषानशेषान् सगुणी करोषि। माँ हम-सबके अशेष दोषों को सद्‌गुणों में रूपान्तरित करती हैं। माँ के जीवन में अमजद का नाम आता है।

माँ का अभयप्रदात्री रूप है। माँ कहती हैं, मेरा बेटा अगर कीचड़ में सन जायेगा, तो उस को कौन साफ करेगा? उसकी मौसी आयेगी? अरे मैं हूँ ना ! चिन्ता मत करो।

माँ का दूसरा रूप : अभयदायिनी गुरु

चिन्मयानन्दजी ने माँ से दीक्षा ली। उन्होंने माँ को गुरु के रूप में देखा। वे लिखते हैं –

नमस्ते भुवनेशानि नमस्ते प्रणवात्मके।
सर्व वेदान्त संसिद्धेः सारदा गुरुमूर्तये।।

ये गुरु कौन हैं? नमस्ते भुवनेशानि – भुवन, ईश। ईश् धातु से ईश्वर बना है। ईश माने शासन करनेवाला। ईशानी अर्थात् समस्त भुवन की जो परिचालिका हैं ! मातृसूक्त में माँ को 'परिमापे' सम्बोधन दिया गया है। सारी पृथ्वी में सब के भाग्य को आप अपनी मुट्ठी से परिमाप करती हो। इसलिये परिमापे कहते हैं।

आगे कहते हैं नमस्ते प्रणवात्मके। हे माँ, तुम प्रणव का साक्षात् विग्रह हो। प्रणव अर्थात् ओंकार। उसके बाद कहते हैं, सर्ववेदान्त संसिद्धेः। आपका जीवन क्या है? समस्त वेदान्त का खुली हुई पुस्तक है। सारदा गुरुमूर्तये – गुरु के रूप में प्रणाम करता हूँ। हम गुरु के रूप में भी माँ को ज्ञानदा मोक्षदा के रूप में पायेंगे।

सुधीरा देवि माँ की बहुत बड़ी शिष्या थीं। माँ से प्रेरणा लेकर वे भारतवर्ष में प्रथम महिला स्वाधीनता क्रान्तिकारिणी बनी। उनका भाई राजा महाराज से प्रेरित होकर हमारे संघ में साधु बना। एक दिन उद्‌बोधन में सुधीरा देवि हँसते-हँसते कहती हैं – अच्छा माँ! ईश्वर ने सब कुछ दे दिया। हाँ दिया! इसमें समस्या क्या है? सबसे बहुमूल्य क्या दिया, जो हम ईश्वर के काम में लगा सकें? माँ कहती हैं – अँगुलियों को दिया है। इन अँगुलियों से ईश्वर के नाम का जप करो, जप करके अँगुलियों को धन्य करो। प्रतिदिन दस-पन्द्रह हजार जप करो। देखो, ये अँगुलियाँ कैसे तुमको ईश्वर तक, भगवान तक, इष्टदेव तक पहुँचाने का सेतु बन जाती हैं। सुधीरा देवि को माँ यहाँ पर यह बता रही हैं कि किस प्रकार अँगुलियों का उपयोग करना चाहिए।

श्रीमाँ के चार महावाक्य

ये माँ कौन हैं? ठाकुर कहते हैं, वह मेरी शक्ति है। वह क्या कम है। वह साक्षात् सारदा है। वेद का सार प्रदान करनेवाली साक्षात् सरस्वती है। माँ गुरु हैं। सरस्वती हैं! सरस्वती को वाङ्‌मयी ब्रह्म कहा जाता है। ब्रह्म का वाणीरूप है सरस्वती। चार वेद हैं। चार वेदों के एक-एक चार महावाक्य हैं। माँ सारदा सरस्वती रूपी वेद के भी चार महावाक्य निकले। पहला महावाक्य – माँ अपने शिष्यों को उपदेश देती थीं – खूब सत्संग करो। दूसरा महावाक्य – हृदय से ठाकुर को पुकारो। तीसरा महावाक्य – अच्छा बनने का प्रयास करो। आप अच्छे हैं, पर यह अन्तिम बात

नहीं है। इससे भी अधिक अच्छा बनने का प्रयास करो। इसके भी परे कुछ है, उसे प्राप्त करने का प्रयास करो। चौथा महावाक्य – माँ कहती हैं, डर क्या है बेटा! अन्त में मैं हूँ न! इतनी बड़ी आश्वासन वाणी कि अन्त में मैं हूँ न, धर्मग्रन्थों में कहीं नहीं मिलती है। एक बार जिसने माँ को 'माँ' कहकर पुकार लिया, बस उसका दायित्व माँ का हो गया। केवल आप माँ बोलिये! माँ प्रतिज्ञाबद्ध हैं। यह है माँ का गुरु रूप।

माँ का अन्तिम उपेदश है, किसी का दोष मत देखो। क्या हम अपने बेटे का दोष नहीं देखेंगे? अध्यापक होने के नाते हम नकल करनेवाले छात्रों का दोष नहीं देखेंगे? मान लीजिए, किसी के यहाँ चोरी हो गयी, वे पुलिस के पास जाएँगे, तो पुलिस बोलती है, क्यों महाशय ! आज क्या बात है? आप ही तो बोलते हैं कि आपकी माँ सारदा कहती है कि किसी का दोष मत देखो, तो चोर का दोष क्यों देख रहे आप? ऐसा नहीं है। दोष देखने के दो आयाम होते हैं – एक नकारात्मक, दूसरा सकारात्मक, जिसे हम निषेधात्मक- विधेयात्मक भी कह सकते हैं। माँ उस दृष्टिकोण को मना कर रहे हैं, जब हम चाय के कप में चुस्की लगाते हुए किसी का दोष देखते हुए कहते हैं, वह यह करता है, वह यह करता है। जब किसी की दोष-चर्चा करने में रस का अनुभव होता है, तो उस दोष को माँ बारम्बार मना कर रही हैं कि ऐसा मत करो। दोष देखने का एक विधेयात्मक दृष्टिकोण भी होता है। उसे चिकित्सक का दृष्टिकोण कहते हैं। डॉक्टर अपने रोगी के रोग का केवल सामान्य दोष नहीं देखता, बल्कि यंत्र के माध्यम से एक्स-रे, एम.आर.आई. से स्केन कर बढ़ा-चढ़ा कर देखता है। किन्तु वह रोगी के रोग के बारे में दूसरे किसी से कहता नहीं है। उसका एक प्रयास होता है मेरे द्वारा किस प्रकार इस रोग का निदान हो। रोगी के कल्याण के लिये दोष देखना तो साधना का अंग ही है। क्योंकि जगत तुम्हारा अपना ही है। आप अपने बेटे का दोष देखकर उसे दूर करने का प्रयास करेंगे, जिससे वह अच्छा हो सके।

माँ का तीसरा रूप : मुक्तिदायिनी परमेश्वरी

अब हम माँ के तीसरे चरित्र पर आते हैं। स्वामी वीरेशानन्द जी महाराज, राजा महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द जी) के शिष्य थे, पर संन्यास माँ के पास हुआ था। उन्होंने अपने स्तोत्र में श्रीमाँ को देवि के रूप में प्रतिपादित किया –

प्रसीद देवि सारदे जगदम्बिके शुभे
आर्तिहन्त्री प्रपन्नानां त्वं प्रसीद परमेश्वरी।
शक्ति शान्ति विधायिनि मुक्तिदात्रे !!

परमा प्रकृति भगवती माँ सारदा के रूप में हैं। यह सरल गणित है – जो राम हैं, जो कृष्ण हैं, वही रामकृष्ण हैं, तो जो सीता, जो राधा, वही श्रीमाँ सारदा हैं। श्रीमाँ ने विष्णुपुर स्टेशन पर एक कूली को सीता के रूप में दर्शन दिया।

एक बालक को राधा के रूप में माँ ने दर्शन दिया। एक बार उद्बोधन में मास्टर महाशय एक चौदह वर्ष के बालक को लेकर आये। वे प्रणाम करते हैं। देखते हैं कि माँ ने घूँघट हटा दिये। जब मास्टर महाशय चले गये, तो माँ उस बच्चे की ओर देखती हैं। थोड़ी देर बातचीत करती हैं, फिर कहती हैं, लाओ, लाओ दूध लाओ और माँ अपना एक प्रिय गीत गाकर उसको सुना रही हैं। राधिका ...। माँ जब वृन्दावन में थीं, तब उस गीत को सीखी थीं – मेरे प्रिय, तू इसका सेवन कर, मेरे प्यारे! यह देखकर गोलाप माँ कहने लगीं, माँ तुमको सुनकर मैं परेशान हो गयी। तुम बच्चे को बिगाड़ दे रही हो।

इतना छोटा बच्चा, जिसकी गाल दबाने से दूध निकलता है, ऐसे बच्चे को तुम प्यारे बोलकर उससे तुम मजाक कर रही हो? जाते समय वह बच्चा प्रणाम करने आता है और उन्हें माँ कहता है, तब माँ कहती हैं, माँ नहीं, मुझे सखी बोलो। अब और गोलाप माँ से रहा नहीं गया। बालक चला गया। गोलाप माँ कहती हैं, माँ अति हो गयी, तुम तो मजाक में ठाकुर से भी आगे बढ़ गयी। माँ गम्भीर होकर कहती हैं, गोलाप ये लीला तुम नहीं समझ पाओगी। छठवें दिन माँ के पास सूचना आयी, एकादशी के दिन वह बालक अपने कमरे में चिल्लाता हुआ कह रहा है – माँ तुम इस रूप से आयी ! माँ, तुम इस राधा रूप में आयी, यह कहते-कहते उसके प्राण चले गये। जब माँ को यह सूचना मिली, तो माँ कहती हैं, धन्य है ! मुझे पता था। उस दिन देखकर ही मैं समझ गयी थी कि उसका यह अन्तिम जन्म है। तब गोलाप माँ हैरान हो जाती हैं। राधा के रूप में भी माँ ने कितने लोगों को दर्शन दिया।

जगद्धात्री के रूप में, काली के रूप में भी माँ ने कितने लोगों को दर्शन दिया है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि श्रीमाँ का मातृत्व रूप अलग, दैवी रूप अलग, गुरु रूप अलग है! सब एक साथ, एक आधार में है।

जयरामबाटी के पास मोडागेड़ नाम का एक छोटा-सा गाँव है। गेड़ अर्थात् तालाब, छोटा तालाब को पुकुर बोलते हैं। कामारपुकुर यानि कामार लोगों का तालाब। मोडागेड़ मोडा याने मण्डल, बँगाल में मण्डल एक उपाधि होती है। गेड़ तालाब, मण्डलों का तालाब। वहाँ भट्टाचार्य का परिवार रहता था, अभी भी है वहाँ पर। वहाँ से बड़े-बड़े काली के साधक हुए। वहाँ तीनकौड़ी बन्द्योपाध्याय नामक एक काली साधक था। वह कोआलपाड़ा में अक्सर चला आता था। राधू के प्रसव के समय छह महीने से अधिक माँ वहाँ थीं। उसको देखकर राधू डर जाती थी, वह कापालिक था। आदमी का कपाल लेकर चला आता था। कभी-कभी माँ उसे कुछ देकर कहतीं, यहाँ पर मत आओ। मैं इनलोगों को साथ लेकर रहती हूँ। इन लोगों को डर लगता है। वह पूछता, माँ दीक्षा कब होगी? माँ कहतीं, जब समय आयेगा, तो मैं तुम्हें बुला लूँगी, अभी चले जाओ। वह चला गया। जब अन्तिम बार माँ जयरामबाटी से विदाई लेकर चली आयीं, उस दिन वह जयरामबाटी आता है। जयरामबाटी ६२ परिवारों का छोटा-सा गाँव था, किसी के घर में खाना नहीं पका था। किशोरी महाराज आश्रम में चुपचाप बैठे हुए हैं। तभी वह तीनकौड़ी बन्द्योपाध्याय आता है। आकर पूछता है, क्यों किशोरी महाराज क्या हो गया? माँ कहाँ गयीं? किशोरी महाराज ने कहा, अरे माँ तो चली गयी! शायद अब यहाँ नहीं आयेंगी। किन्तु अभी भी तुम दर्शन पाना चाहो, तो कोआलपाड़ा जाओ। चलो हम भी चलते हैं। ये बात हमने स्वयं किशोरी महाराज से सुनी है। किशोरी महाराज भागते-भागते आमोदर नदी तैरकर कोआलपाड़ा में शार्टकट से दौड़ते-भागते गये। माँ को उसी दिन रात की ट्रेन पकड़नी थी। सारदानन्दजी बार-बार योगाश्रम खबर भेज रहे हैं, तुम माँ को बोलो आने के लिये, बैलगाड़ियाँ खड़ी हैं, अभी अगर प्रस्थान नहीं किये, तो पहुँच नहीं पायेंगे। रात की ट्रेन पकड़ नहीं पायेंगे। उधर माँ बार-बार उतावली होकर पूरब की ओर देख रही हैं। केशवानन्द जी आते हैं, ब्रह्मचारी हरिप्रेम आता है, सब लोग कहते हैं – माँ! महाराज नाराज हो रहे हैं। माँ कहती हैं – जाओ, सारदा महाराज को बोल दो, हम लोग स्त्रियाँ हैं। हमलोगों को तैयार होने में समय लगता है। उसके पास अगर उतना धैर्य न हो, तो हमारे लिए एक गाड़ी छोड़कर वह चला जाय। मैं विष्णुपुर रेलवे स्टेशन पर उससे मिल लूँगी। फिर घर से द्वार और द्वार से घर में आती-जाती हैं। तभी माँ देखती हैं कि दो लोग – तीनकौड़ी बन्द्योपाध्याय और किशोर महाराज भागते हुए आ रहे हैं। तीनकौड़ी वन्द्योपाध्याय ने रोते हुए कहा, माँ तुम चली जा रही हो, तो मेरा क्या होगा? माँ कह रही हैं, अरे ! तेरे लिये ही तो मैं इतनी देर से प्रतीक्षा कर रही थी। चलो, अब समय नहीं है, यह कहकर बोसपुकुर के पास ले गयीं, अब वह तालाब नहीं है। जगदम्बा आश्रम के पास यह बोसपुकुर था। वहाँ पुआलों की दो बड़ी-बड़ी पुंज थीं। उन दोनों के बीच गली जैसी हो गई थी, उसमें पुआल बिछाकर दो आसन बनाया गया। एक आसन में माँ स्वयं बैठती हैं और दूसरे में तीनकौड़ी बन्द्योपाध्याय को बैठने को कहती हैं और उसको दीक्षा प्रदान करती हैं। वह माँ को प्रणाम करता है। माँ कहती हैं इतने दिन मैं माँ थी, आज हो गयी गुरु ! गुरु को इस प्रकार प्रणाम नहीं करते हैं बेटा! सिर लगाकर प्रणाम करते हैं। फिर माँ कहती हैं, बेटा ! दीक्षा के बाद गुरु को कुछ दक्षिणा भी देनी पड़ती है। वह कहता है, मेरे पास तो कुछ भी नहीं है। माँ ने कहा, कुछ भी नहीं है बेटा तुम्हारे पास? नहीं माँ, कुछ भी नहीं है। तीसरी बार माँ प्रश्न करती हैं, कुछ भी नहीं है बेटा तुम्हारे पास? केशवानन्दजी महाराज और किशोरी महाराज दूर खड़े होकर टकटकी लगाकर देख रहे हैं कि किस प्रकार से दीक्षा हो रही है, कैसा वार्तालाप हो रहा है। तृतीय बार जब माँ पूछती हैं, क्या कुछ भी नहीं तुम्हारे पास मुझको देने के लिये? तीनकौड़ी बन्द्योपाध्याय रोते-रोते कहता हैं, हाँ, माँ है। लोगी तो बोलो, मेरे पास जन्म-जन्मान्तर का पाप, कलंक है। क्या उसे लोगी? माँ हाथ फैलाती हैं, दो बेटा, वही दो मुझे। वह माँ को साष्टांग प्रणाम कर उनके चरणों में सो जाता है। बहुत बड़ी घटना घट गई, लीलारूपिणी माँ ने लीला कर ली। माँ हँसते-हँसते अपने पाँव से उसका सिर हटाकर बगल में रखकर चली आयीं। माँ ने किशोरी महाराज और केशवानन्दजी महाराज को खड़ा देखकर कहा – अरे, तुमलोग यहाँ खड़े थे? उनलोगों ने कहा, हाँ, देख रहे थे, पता नहीं वह कापालिक क्या करता! माँ ने कहा, चलो, चलो, अब चलो ! सारदानन्दजी महाराज के साथ वे चली गयीं। इधर एक घण्टा बीता, दो घण्टे, तीन घण्टे, पाँच घण्टे बीत गये। सन्ध्या के समय बँगाल में शंखध्वनि होती है। शंखध्वनि सुनकर तीनकौड़ी बन्द्योपाध्याय का बाह्यज्ञान वापस आता है। केशवानन्दजी और किशोरी महाराज पूछते

हैं, अरे भाई, क्या हो गया? वह कहता है, जब माँ ने कहा कि दे दो और जब मैं माँ की ओर देखा, तो देखता हूँ कि वे माँ के चरण नहीं, मेरी इष्ट देवी साक्षात् माँ काली के चरण हैं। जब मैं माँ का मुख देखता हूँ, तो वह माँ का श्रीमुख नहीं था, मुझे तो माँ ने मेरी इष्टदेवी का दर्शन करवा दिया। तो ऐसी हैं हमारी श्रीमाँ! कैसे हम समझेंगे उनको?

किन्तु बड़ी बात यह है माँ ने हमें आश्वासन दिया है, अभय वचन दिया है। एक माँ के तीन बेटे हैं। माँ तीसरी मंजिल पर काम कर रही हैं। नीचे तीनों बेटे खेल रहे हैं, सन्ध्या हो गयी। माँ ने बच्चों को पुकारा – चले आओ, अब खेलो मत, सन्ध्या हो गयी। बड़ा बेटा बुद्धिमान है, वह माँ की पहली पुकार पर ही माँ के पास चला गया। दोनों भाई अभी भी खेल रहे हैं। खेल में मत्त हैं। थोड़ी देर बाद माँ ने दूसरी बार पुकारा, जल्दी आओ, नहीं तो, अब पिट जाओगे। चले आओ, कह रही हूँ! माँ थोड़ी नाराज हुईं। आपातत: बच्चे पर अनुशासन करते हुए डाँटती हैं। दूसरा मझला बेटा भी चला गया। किन्तु छोटा बेटा नादान है, गोद का बालक है। वह अकेले ही खम्भा पकड़कर बनबन करते हुये घुमता है। अन्धेरा हो गया। अन्धेरे में दौड़ते-भागते उसे ठोकर लग गयी और गिर गया, होंठ कट गये, खून निकलने लगा। वह चिल्लाकर माँ-माँ कहकर रोने लगा। माँ ने बच्चे का क्रन्दन सुना। माँ से रहा न गया। वह अब नाराज नहीं हुई। वह स्वयं दौड़कर जाती हैं और अपनी गोद में उठाकर लेकर चली जाती हैं। तो ऐसी ही हमारी माँ हैं!

माँ कहती हैं कि जानना कि तुम्हारी एक माँ है। गिरीश घोष को माँ कहती है – मैं तुम्हारी सचमुच माँ हूँ। जो एक बार मुझे माँ कहकर पुकार ले, तो ब्रह्मा-विष्णु-महेश की भी क्षमता नहीं कि वे मेरे बेटे-बेटियों का कुछ बिगाड़ सकें।

इस प्रकार तीन महात्माओं की दृष्टि से हमने श्रीमाँ को देखा। यदि हमें हमेशा इतना भी याद रहे कि हमारी माँ हैं और हमारे साथ हैं, तो हमें अन्य कुछ करने की आवश्यकता नहीं रहेगी। आइये आज से हम पहले से भी अधिक मातृमय, माँ के सान्निध्य में जीवन जीने का संकल्प लें ! ○○○

मुझ निर्बल पर कृपा करो माँ !

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

अज्ञानकूप में पड़ा हुआ हूँ, मुझको उससे निकाल लो माँ।
हे जगजननी सारदा देवी, मुझ निर्बल पर कृपा करो माँ।।
ब्रह्मा विष्णु महेश से पूजित, रामकृष्ण-गतप्राणा तुम माँ।
दु:खनाशिनी ज्ञानदायिनि, मुझ निर्बल पर कृपा करो माँ।।
भयाक्रान्त हूँ जरा-मरण से, उससे मुझको मुक्त करो माँ।
नित्य सनातनि अभयप्रदायिनि, मुझ निर्बल पर कृपा करो माँ
गंगा बनकर इस जग में तुम, मोक्ष बाँटती हो सबको माँ।
हे जगव्यापिनि त्रिलोकपालिनि, मुझ निर्बल पर कृपा करो माँ।
पावनता की तुम प्रतिमूर्ति, मोक्ष तुम्हारे करतलगत माँ।
इष्टप्रदायिनी अदोषदर्शिनि, मुझ निर्बल पर कृपा करो माँ।।
भक्तजनों को साधनपथ पर, सिद्धिमार्ग दिखलाती तुम माँ।
हे भवतारिणी पापविनाशिनि, मुझ निर्बल पर कृपा करो माँ।।
रामकृष्णसन्तानवत्सला, भक्ति-मुक्ति-प्रदायिनि तुम माँ।
तापहारिणी सत्यधारिणी, मुझ निर्बल पर कृपा करो माँ।।
आदिशक्ति विज्ञानविभूषित, सर्वदु:खहर देवी तुम माँ।
मंत्रपूत भगवति भवतारिणि, मुझ निर्बल पर कृपा करो माँ।।

साधु-दुष्ट दोनों की माता, समताबुद्धि-विधायिका तुम माँ।
कीर्तिप्रदायिनि चिरसुखदायिनि, मुझ निर्बल पर कृपा करो माँ।
तव चरणों की विमल भक्ति से, उर में मिलती शान्ति हमें माँ।
विशालाक्षि हे चिन्मयरूपिणि, मुझ निर्बल पर कृपा करो माँ।।
रामकृष्ण की परम शक्ति तुम, मेरे उर में वास करो माँ।
भक्तहृदय-नित-सदावासिनी, मुझ निर्बल पर कृपा करो माँ।।
अपनी दिव्य दृष्टि से तत्क्षण, तमस दूर करती हो तुम माँ।
शान्ति-सौख्य-प्रदायिनि देवी, मुझ निर्बल पर कृपा करो माँ।।
मलिन चित्त है मोहग्रस्त हूँ, उर में ज्ञानप्रकाश करो माँ।
परम शक्ति तुम जगततारिणी, मुझ निर्बल पर कृपा करो माँ।।
घोर तिमिर के महाजाल से, मुझको सत्वर मुक्त करो माँ।
रामकृष्णप्रिय सन्मतिदायिनि, मुझ निर्बल पर कृपा करो माँ।।
ज्ञानदायिनी सारदा हो तुम, वेदवाणि की गूँज तुम्हीं माँ।
पुण्यनामधारित तुम देवी, मुझ निर्बल पर कृपा करो माँ।।
नहीं जानता किसी देव को, केवल तुम पर आश्रित हूँ माँ।
हे परमेश्वरि त्रिलोकपालिनि, मुझ निर्बल पर कृपा करो माँ।।

रामराज्य का स्वरूप (१/३)
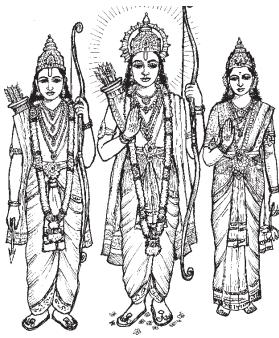
पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९८९ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है । – सं.)

सृष्टि में, संसार की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि सुख पाने की अभिलाषा प्रत्येक व्यक्ति में विराजमान है, परन्तु सुख पाने की अभिलाषा के साथ-साथ जब हम देखते हैं कि सामनेवाले व्यक्ति में सुख है, तो हम सामनेवाले के सुख को छीनने के लिये प्रयत्नशील हो जाते हैं।

प्रतापभानु की कथा, प्रतापभानु का चरित्र बड़ा अद्भुत है, पर वह इतना नीरस प्रतीत होता है कि बहुधा उसमें रस पाना सबके लिये सम्भव नहीं है। उसमें प्रतापभानु के राज्य का वर्णन किया गया है और राज्य पाने के बाद प्रतापभानु के चरित्र में उत्कृष्ट पक्ष का समावेश होते हुए भी दूसरों को जीतने की आकांक्षा दिखती है। गोस्वामीजी ने कहा –

बिजय हेतु कटकई बनाई।
सुदिन साधि नृप चलेउ बजाई।। १/१५३/५

प्रतापभानु के अन्त:करण में दूसरों को जीतने की आकांक्षा उत्पन्न हुई। तब उसने यह निर्णय लिया कि हम अन्य राज्यों पर आक्रमण कर उन राज्यों पर अधिकार प्राप्त करेंगे। ज्योतिषियों से मुहूर्त पूछकर प्रतापभानु ने प्रस्थान किया। अब इसका अभिप्राय क्या हुआ? दूसरों पर विजय पाने का उद्देश्य क्या है? प्रतापभानु राजा है। उसके पास किसी वस्तु की कमी नहीं है। परिवार है, पत्नी है, सम्पत्ति है, सभी उत्कृष्ट वस्तुएँ उसके जीवन में उपलब्ध हैं। इतना होते हुए भी जब वह दूसरे राजाओं पर आक्रमण करने के लिये व्यग्र होता है, तो इसका अर्थ क्या हुआ? दूसरों के राज्य को छीनने की इच्छा। दूसरों की वस्तु पर अधिकार पाने की इच्छा, तो यही सिद्ध करता है कि प्रतापभानु कितना भी उत्कृष्ट धर्म-कर्म करनेवाला क्यों न रहा हो, पर दूसरों का सुख छीन लेने की वृत्ति उसमें विद्यामान थी। विजय का उद्देश्य अगर दूसरे के अधिकार को छीनना हो, तो प्रतापभानु के चरित्र में वह वृत्ति विद्यमान है।

एक बड़ी प्रसिद्ध लघु गाथा कही जाती है। प्राचीन काल में यह बड़ी प्रचलित थी कि जब राजा राज्य सिंहासन पर बैठते थे और जब उनमें महत्त्वाकांक्षा जागृत होती थी, तो वे सेना लेकर दूसरे राज्य की सीमा पर आक्रमण करते थे और दूसरे राजाओं को परास्त करके बड़े प्रसन्न होते थे। कहा जाता है कि एक राजा सेना लेकर दूसरे राज्य की ओर बढ़ा। खेतों में खड़ी फसल को रौंदते हुए, लूट-पाट करते हुए सेना आगे बढ़ रही थी। एक भिखारी ने किसी से पूछ दिया, ये कौन हैं? बोले – ये राजा के सैनिक हैं। कहाँ जा रहे हैं? बोले – दूसरे राज्य पर आक्रमण करने जा रहे हैं। क्यों जा रहे हैं, इतना कष्ट दूसरों को क्यों दे रहे हैं? बोले – वहाँ आक्रमण करके वहाँ से वस्तु और सम्पत्ति एकत्र करेंगे और अपने राज्य को और भी अधिक समृद्ध बनायेंगे। भिखारी बड़ा विवेकी था। राजा की सवारी आनेवाली थी। वह रास्ते पर सामने खड़ा हो गया और हाथ जोड़कर राजा से कहा – सुनिए। राजा ने सोचा, भिखारी कुछ माँगनेवाला है। पर भिखारी ने माँगा नहीं, अपितु अपनी झोली से एक सिक्का निकाला और उसे दिखाकर राजा से कहा, लीजिए। राजा के क्रोध की सीमा नहीं रही। बोले यह भिखारी मुझे एक रुपये का सिक्का देने की चेष्टा कर रहा है? उसने पूछा, तुम जानते हो मैं कौन हूँ? बोला मैं जनता हूँ, आप राजा हैं। तो फिर तुम मुझसे माँगने के स्थान पर मुझे सिक्का देने की धृष्टता क्यों कर रहे हो? भिखारी ने कहा – मैं तो आवश्यकता की पूर्ति के लिए माँगता हूँ, लेकिन मैंने जब देखा कि आवश्यकता की पूर्ति में आप लोगों को मारने में भी संकोच नहीं कर रहे हैं, तो मैं समझ गया कि आपकी अवश्यकता मुझसे बड़ी है, इसलिये हम भी थोड़ा कुछ दे दें, जिससे आपकी आवश्यकता कुछ तो कम हो जाए। बात यही है, मानो दूसरों को हराने की वृत्ति थी।

अब भगवान राम के जीवन को भी देखिए। रामराज्य क्या है? रामराज्य में भी विजय की गाथा का वर्णन आता है, पर उनके विजय का लक्ष्य क्या है? भगवान श्रीराम के चरित्र का जो आदर्श पक्ष है, वह क्या है? बाल्यावस्था से लेकर पूरे रामचरितमानस में भगवान श्रीराघवेन्द्र जो युद्ध करते हैं, वह युद्ध किसलिये, किसकी विजय के लिये करते हैं? देखिए, जब भी युद्ध होगा, तो एक पक्ष जीतेगा और एक पक्ष हारेगा। उसका परिणाम दोनों के लिये घातक होगा। जो पक्ष जीतेगा, उसे अभिमान होगा कि मैं विजेता हूँ, मैं सबका स्वामी हूँ। जो पक्ष हारेगा, उसमें घृणा उत्पन्न होगी, विद्वेष उत्पन्न होगा, बदला लेने की वृत्ति उत्पन्न होगी।

प्रतापभानु के सन्दर्भ में आपको यही मिलेगा। अगर प्रतापभानु के जीवन में दूसरों को हराने की महत्त्वाकांक्षा न होती, दूसरों की वस्तु छीनने की महत्त्वाकांक्षा न होती, तो उसकी अन्तिम परिणति रावण के रूप में न होती। क्यों जब प्रतापभानु ने आक्रमण किया, तो उसके सामने आने का साहस अधिकांश राजा नहीं कर पाए। अधिकांश राजाओं ने उसके सामने समर्पण कर दिया और उसका स्वामित्व स्वीकार कर लिया। लेकिन अनगिनत राजाओं में से, एक राजा ऐसा था, जो बहुत ही अहंकारी था और उसको किसी भी प्रकार से किसी के सामने झुकना स्वीकार नहीं था। जब उस राजा के मंत्रियों ने कहा कि देखिए, सूर्य से होड़ नहीं लेनी चाहिए, प्रतापभानु का प्रताप सूर्य के समान चमक रहा है। प्रतापभानु के सामने झुक जाना ही ठीक है, तो उसने कहा – नहीं, मैं प्रतापभानु के सामने न तो झुकूँगा और न ही हार स्वीकार करूँगा। तो फिर क्या कीजिएगा? तब उसने कहा, मैं समय की प्रतीक्षा करूँगा। वह इतना अहंकारी था किन्तु समय की प्रतीक्षा करने का उसमें इतना धैर्य था कि उसने कहा – वह सूर्य के समान चमक रहा है, इसीलिए तो मैं निश्चिन्त हूँ। क्या? बोले सूर्य का उदय होता है, तो अस्त भी तो होता है। जब प्रतापभानु के अस्त होने का समय आएगा, तो अस्त होते समय मैं देखूँगा और तब बताऊँगा कि तुम्हीं परास्त नहीं करते, तुम्हें भी परास्त किया जा सकता है। परिणाम क्या हुआ? वह महत्त्वाकांक्षा, जो दूसरों का सुख, दूसरों की सम्पत्ति छीनने की वृत्ति प्रतापभानु के जीवन में है, वही दूसरे के मन में बदला लेने की प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है।

एक दूसरा पक्ष, जिसे गोस्वामीजी ने बड़े गम्भीर रूप में प्रस्तुत किया है। उन्होंने कहा कि प्रतापभानु ने सारे संसार पर अधिकार कर लिया और वह राजा जिसने प्रतापभानु की अधीनता स्वीकार नहीं की, वन में चला गया। मुनि का वेष बना लिया और षड्यन्त्रकारी योजना बनाने लगा। वहाँ पर भी गोस्वामीजी ने सूत्र दिया। कालकेतु नाम का एक राक्षस था। उसके सौ पुत्रों और दस भाइयों को प्रतापभानु ने मार डाला था। पर कालकेतु बचा रह गया। कालकेतु ने इस पराजित राजा से मिलकर षड्यन्त्र की योजना बनाई। एक ओर प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई इस प्रतापभानु के विजय यात्रा की और दूसरी ओर गोस्वामीजी ने और भी गंभीर रूप में वर्णन किया। गोस्वामीजी कहते हैं, सबको परास्त कर देने के बाद प्रतापभानु के मन में जब दूसरा काम तो नहीं रह गया, तो उसमें पशुओं को मारने की, शिकार खेलने की वृत्ति उदित हुई। याद रखिए, व्यक्तियों को ही नहीं, व्यक्ति अपने सुख के लिए पशुओं को नष्ट करने में, दुख देने में प्रसन्नता का अनुभव करता हो, तो वस्तुत: वह सबका कल्याणकारी अहिंसक वृत्ति न होकर, हिंसा की वृत्ति ही है, दूसरों से छीनने की वृत्ति ही है। प्रतापभानु में हिंसा की वृत्ति भी थी। उस हिंसा की वृत्ति से प्रेरित होकर कहाँ गया? गोस्वामीजी ने कहा –

बिंध्याचल गभीर बन गयऊ।
मृग पुनीत बहु मारत भयऊ।। १/१५५/४

वह विन्ध्याचल के गम्भीर वन की यात्रा करता है। यह विन्ध्याचल शब्द का जो चुनाव किया गया, यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। वह वन में शिकार खेलने के लिये गया, इतना लिखकर तुलसीदासजी सन्तोष कर सकते थे, पर उन्होंने वन के साथ 'विन्ध्याचल' को जोड़ दिया कि विन्ध्याचल के गम्भीर वन में वह शिकार खेलने गया। इसके पीछे गोस्वामीजी का एक विशेष तात्पर्य है। वह तात्पर्य क्या है? इस विन्ध्याचल के चरित्र में वह सूत्र विद्यमान है, जो प्रतापभानु के चरित्र को व्यक्त करने के लिए आवश्यक है। यह विन्ध्याचल व्यक्ति की महत्त्वाकांक्षा का प्रतीक है। विन्ध्याचल की कथा आपने पढ़ी होगी या सुनी होगी। विन्ध्याचल पर्वत को जब यह पता चला कि सूर्य सुमेरू पर्वत की परिक्रमा करता है, तो उसके मन में सुमेरू से ईर्ष्या उत्पन्न हुई और तब ईर्ष्या से प्रेरित होकर विन्ध्याचल ने सूर्य से कहा कि जैसे सुमेरू की परिक्रमा करते हो, इसी

प्रकार से तुम मेरी भी परिक्रमा करो। सूर्य ने कहा कि मैं तो प्रकृति और सृष्टि के नियम से बाध्य हूँ, मेरे लिये ऐसा करना संभव नहीं है। तब विन्ध्याचल ने सूर्य से कहा कि तुम अगर मेरी परिक्रमा नहीं करोगे, तो मैं तुम्हारे प्रकाश को संसार में आने से रोक दूँगा। विन्ध्याचल की ऐसी महत्त्वाकांक्षा है।

संसार में अनेक अच्छे व्यक्ति होते हैं, पर उनमें विंध्याचल की महत्त्वाकांक्षा होती है, ईर्ष्या की वृत्ति होती है। जब दूसरे कोई व्यक्ति तेजस्वी और यशस्वी होते हैं, वन्दनीय होते हैं, तो उनके प्रति ईर्ष्या उत्पन्न होती है। वे चाहते हैं, सूर्य मेरी चारों ओर परिक्रमा करें, इसका अभिप्राय यह है कि प्रभा-मण्डल मेरे ही चारों ओर रहे। आजकल तो बड़ी व्यग्रता से यह चाह होती है कि मेरे चारों ओर प्रभा-मण्डल बना रहे। विन्ध्याचल की वृत्ति तो आजकल बड़ी व्यापक है। दूसरों के चारों ओर प्रकाश न हो या कम हो, पर मेरे चारों ओर प्रकाश हो। उसका परिणाम क्या हुआ प्रतापभानु के जीवन में? विन्ध्याचल के गम्भीर वन में मानो सबको परास्त कर देने के बाद, सबकी सम्पत्ति छीन लेने के बाद, सुख छीन लेने के बाद, वह पशुओं के ऊपर भी आक्रमण करता है। वह विन्ध्याचल के वन में जाता है। विन्ध्याचल मानो महत्त्वाकांक्षा का प्रतीक है। इस विन्ध्याचल पर्वत की यात्रा का अन्तिम परिणाम यह हुआ कि वह दिनभर शिकार खेलता हुआ पशुओं को अपने बाण का शिकार बनाता है, पशुओं का वध करता है। वह अनेक पशुओं का वध करके अपनी सफलता पर प्रसन्न होकर घर लौट रहा था, तो लौटते समय उसको एक वाराह दिखाई पड़ा। उस वाराह को देखकर उसके मन में यह वृत्ति, यह इच्छा उत्पन्न हुई कि इस पशु को भी मैं क्यों छोड़ूँ? बस, यही उसके पतन का कारण हुआ।

गोस्वामीजी कहते हैं, संसार वन है, लोभ सूकर है। उस क्रम पर आप ध्यान से देखेंगे, तो दूसरों की छीनने की वृत्ति महत्त्वाकांक्षा की पराकाष्ठा है और सूकर के पीछे भागना माने लोभ के पीछे अंधाधुंध भागना। उसने सूकर पर बाण चलाया, पर वह बाण सूकर को नहीं लगा, क्योंकि वह कालकेतु नाम का राक्षस था। वह नकली वेष बनाकर आया हुआ था। यह लोभ नकली वेष बनाने की कला में बड़ा निपुण है। इस लोभ के पीछे व्यक्ति जब अंधाधुंध भागता है, तो इसका अंतिम परिणाम क्या हुआ? गोस्वामीजी ने कहा –

अति अकेल बन बिपुल कलेसू।
तदपि न मृग मग तजइ नरेसू।। १५६/६

संगी-साथी, मंत्री, सेनापति सभी छूट गये, लेकिन प्रतापभानु उस सूकर के पीछे भागा जा रहा है। प्रतापभानु का चित्र केवल प्रतापभानु का चित्र नहीं है, वह तो अनगिनत व्यक्तियों का चित्र है, जिनमें महत्त्वाकांक्षा और लोभ में अंधाधुंध भागने की प्रवृत्ति है। उस प्रवृत्ति का परिणाम क्या हुआ? वह रावण न बनता, यदि उसने दूसरों का सुख छीनने की चेष्टा न की होती। वह मृग (सूकर) वन में कहीं अन्तर्धान हो गया, क्योंकि वह मायावी कालकेतु राक्षस था। अब राजा भूख-प्यास के कारण व्याकुल हो गया और प्यास बुझाने के लिये जल खोजने लगा। उसी समय वह राजा, जिसे उसने हराया था, वहाँ पर कपट मुनि के रूप में विद्यमान था। वह कुटिया बनाकर वहाँ रह रहा था। प्रतापभानु उसके आश्रम में प्रवेश करता है। जिस समय उसने आश्रम में प्रवेश किया, उस समय सूर्य डूब रहा था। उस कपटमुनि ने एक बार प्रतापभानु की ओर देखा और एक बार सूर्य की ओर देखा। तुलसीदासजी ने व्यंग्यात्मक शब्द लिखा –

आसन दीन्ह अस्त रबि जानी। १/१५८/२

सूर्य डूब रहा है। कपट मुनि ने राजा का स्वागत किया। कहा, बहुत अच्छे समय में आए। प्रतापभानु ने समझा स्वागत हो रहा है, पर उसमें व्यंग्य था। इधर भी सूर्य डूब रहा है और तुम भी डूबने वाले हो। परिणाम यह हुआ कि अन्त में कपट मुनि और कालकेतु ने मिलकर के ऐसी स्थिति निर्मित कर दी कि प्रतापभानु रावणत्व की दिशा में अभिमुख ही नहीं हुआ, रावण बनने के लिये बाध्य हो गया। मानो यह प्रत्येक व्यक्ति के लिये संकेत है। हम चाहे कितना भी धर्म-कर्म करनेवाले क्यों न हों, पर हमारे मन में दूसरों का सुख छीन-लेने की वृत्ति है, लोभ के पीछे अंधाधुंध भागने की प्रवृत्ति है, दम्भ और कपट की पूजा करने की वृत्ति है, तो हम दशमुख बने बिना नहीं रह सकते। **(क्रमशः)**

संसार में पनडुब्बी की भाँति रहो। पानी उसके शरीर में लगता है, किन्तु वह उसे झटक देती है। कीचड़ में रहनेवाली 'पाँकाल' मछली की भाँति संसार में रहो। यह मछली कीचड़ में रहती तो है, पर उसका शरीर सदा स्वच्छ रहता है।

– श्रीरामकृष्ण देव

सारदा-भुजंगप्रयात-स्तोत्रम्

स्वामी गीतेशानन्द, शिमला, हिमाचलप्रदेश

विनाशोद्भवा पालिका ह्यादि शक्तिः
पशूनां सुकृत्पापयोः प्रेक्षिका या।
कटाक्षेण कृत्यं सकृत्दुष्कृतानि
करोत्यम्ब सा सारदे वै त्वमेव।।१।।

– जो आदिशक्ति सृष्टि, स्थिति, विनाश करती हैं, जो जीवों के पाप-पुण्य की साक्षीभूत हैं, जो कटाक्ष मात्र से पाप को पुण्य में बदल देती हैं, हे माँ सारदे ! वह तुम्हीं हो !

जगन्मोहिनी कर्मपाशं विधात्री
पुनर्मोहपङ्काय भागीरथी या।
सुधा नाम संजीवनी प्रेयरोगे
नमामश्च तां सारदाम् सारदात्रीम्।।२।।

– जगत को मोहित करनेवाली, कर्मपाश में बाँधनेवाली, लेकिन मोह-कीचड़ में सने लोगों के लिए जो भागीरथी स्वरूप हैं, प्रेय (भोगेच्छा) रोग-निवारण के लिए जिसका मधुर नाम संजीवनी तुल्य है, उस सारदात्री सारदा को हम प्रणाम करते हैं।

अकम्पीक्षणा वै च योगासनस्था
हृदाकारभूतं सुपाणिद्वयं ते।
लसत्लम्बकेशा करे स्वर्णभूषा
सुधौताम्बराम्बानुकम्पां हि कुर्यात्।।३।।

– जो स्थिर दृष्टि से तथा योगासन में बैठी हैं और जिसके दो हाथ हृदय के आकार धारण किए हुए हैं, जिसके वक्ष में सुन्दर केश लटक रहे हैं, हाथ में जिसके आभूषण हैं, वह श्वेत-वस्त्रयुक्ता अम्बा हम पर कृपा करे!

तव प्रेमतोयं सुपीत्वा मनुष्याः
अभीतिं लभन्ते भवातङ्कतो वै।
अपस्मारमाधेश्चिरस्मारिका या
नमामस्स्मरामश्च नस्तांस्स्मराध्नीम्।।४।।

– तुम्हरे प्रेम-जल का पान कर मनुष्य भव के आतंक से अभय प्राप्त करते हैं। भ्रम में जो सदा स्वरूप का स्मरण कराती रहती है, उस कामनाशिनी को हम नमस्कार और स्मरण करते हैं।

रथेषासि धर्मध्वजीनाम् धुरीणा
तथा रामकृष्णौ च वा रामकृष्णः।

श्रीमाँ सारदा, बेलूड़ मठ

त्वया प्रेरितास्ते च मातस्तथापि
नमामोऽवतारानुगां सारदान्तवाम्।।५।।

तुम धर्मध्वजियों (धर्म-रथ) की धुरी और नायिका हो। राम, कृष्ण तथा रामकृष्ण को प्रेरण करती हो, हे माँ! फिर भी तुम इनकी अनुगामी हो। ऐसी सारदा माँ को हम नमस्कार करते हैं।

चिदानन्दमूर्तिश्च सत्यस्वरूपा
मनोवाक्यवृत्तेश्च ह्याधारभूता।
गुणीशा तथापि प्रपंचात्परं या
नमः सारदायै च जगन्मातृकायै।।६।।

– जो चिदानन्द मूर्ति तथा सत्य स्वरूप है, मन और वाणी का आधार है, गुणों की स्वामिनी है, लेकिन फिर भी प्रपंच से परे है, उस जगन्माता सारदा के लिये नमस्कार है। ○○○

कार्यों में अत्यधिक व्यस्त रहते हुए भी भगवान का स्मरण और चिन्तन अवश्य करना चाहिए। ध्यान, प्रार्थनादि का समय क्रमशः बढ़ाते जाओ।

भगवान अपने परम आत्मीय हैं। जितनी तीव्रता से व्यक्ति साधना करता है, उतनी जल्दी वह भगवान को पा लेता है।

– श्रीमाँ सारदा देवी

प्रश्नोपनिषद् (८)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुन: स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विद्ययाऽत्मान-मन्विष्याऽदित्यमभिजयन्ते। एतद्वै प्राणानामायतनमेतद-मृत मभयमेतत्परायणमेतस्मान्न पुनरावर्तन्त इत्येष निरोधस्तदेष श्लोक:।।१०।।

अन्वयार्थ – अथ और **तपसा** इन्द्रिय-जय के द्वारा, **ब्रह्मचर्येण** ब्रह्मचर्य के द्वारा, **श्रद्धया** आस्तिक्य बुद्धि के द्वारा, **विद्यया** प्रजापति में आत्म-भावना-रूप विद्या अर्थात् उपासना के द्वारा (और) **आत्मानम्** प्राण या सूर्य-रूप जगदात्मा को **अन्विष्य** अन्वेषण करके, 'मैं ही जगदात्मा हूँ' ऐसा जानकर **उत्तरेण** उत्तर मार्ग के द्वारा **आदित्यम्** आदित्य को **अभिजयन्ते** प्राप्त होते हैं। **एतत् वै** ये (आदित्य) ही **प्राणानाम्** समस्त प्राणों के **आयतनम्** आश्रय हैं, **एतत्** ये **अमृतम्** अविनाशी हैं, **अभयम्** अभय हैं (चन्द्र के समान क्षय-वृद्धि-प्राप्ति के भय से रहित हैं), **एतत्** ये **परायणम्** परम गति हैं, **इति** चूँकि **एतस्मान्** इनसे **न पुनरावर्तन्ते** पुनरावृत्त नहीं होते, **इति** अत: **एष** यह **निरोध:** (अज्ञानी लोगों के लिये) अवरुद्ध है। **तत्** इसी विषय का **एष:** यह (अगला) **श्लोक:** मन्त्र है।

भावार्थ – और (दूसरे लोग) इन्द्रिय-जय के द्वारा, ब्रह्मचर्य के द्वारा, आस्तिक्य बुद्धि के द्वारा, प्रजापति में आत्म-भावना-रूप विद्या अर्थात् उपासना के द्वारा, प्राण या सूर्य-रूप जगदात्मा को अन्वेषण करके, 'मैं ही जगदात्मा हूँ' ऐसा जानकर उत्तर मार्ग के द्वारा आदित्य को प्राप्त होते हैं। ये (आदित्य) ही समस्त प्राणों के आश्रय हैं, ये अविनाशी हैं, अभय हैं (चन्द्र के समान क्षय-वृद्धि-प्राप्ति के भय से रहित हैं) ये परम गति हैं; चूँकि इनसे पुनरावृत्त नहीं होते, अत: ये अज्ञानी लोगों के लिये निरुद्ध हैं। इसी विषय का यह (अगला) मन्त्र है।

भाष्य – अथ उत्तरेण अयनेन प्रजापते: अंशं प्राणम् अत्तारम् आदित्यम् अभिजयन्ते। केन? तपसा इन्द्रिय-जयेन विशेषत: ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विद्यया च प्रजापति-आत्म-विषयया आत्मानं प्राणं सूर्यं जगत: तस्थुष: च अन्विष्य अहम् अस्मि इति विदित्वा आदित्यम् अभिजयन्ते अभि-प्राप्नुवन्ति।

भाष्यार्थ – अब उत्तर मार्ग के द्वारा, प्रजापति के अंशरूपी प्राण, भोक्ता या सूर्यलोक को प्राप्त किया जाता है। किस साधन के द्वारा? तप अर्थात् इन्द्रियों का निग्रह और विशेष रूप से ब्रह्मचर्य, श्रद्धा-भावना तथा विद्या अर्थात् इस उपासना के द्वारा कि 'प्रजापति ही अपना आत्मस्वरूप है' – स्वयं को प्राण, सूर्य तथा जगत् के समस्त चर-अचर प्राणियों की आत्मा के रूप में जानकर आदित्य को प्राप्त किया जाता है।

एतत् वै आयतनं सर्व प्राणानां सामान्यम् आयतनम् आश्रयम् एतद्-अमृतम् अविनाशि अभयम् अत एव भयवर्जितं न चन्द्रवत् क्षय-वृद्धि-भयवत्। एतत् परायणं परा गति: विद्यावतां कर्मिणां च ज्ञानवताम्।

वस्तुत: यही (उत्तरायण मार्ग द्वारा प्राप्य सूर्यलोक) समस्त प्राणियों का सामान्य आश्रय है, यह अमृत है, अविनाशी है और चन्द्रलोक के समान क्षय-वृद्धि से रहित होने के कारण भयरहित है। उपासकों तथा उपासनायुक्त कर्म करनेवालों की यही परम गति या लक्ष्य है।

एतस्मात् न पुनरावर्तन्ते यथा इतरे केवल कर्मिण: इति। यस्मात् एष: अविदुषां निरोध:। आदित्यात् हि निरुद्धा: अविद्वांस:। न एते संवत्सरम् आदित्यम् आत्मानं प्राणम् अभि-प्राप्नुवन्ति। स हि संवत्सर: कालात्मा अविदुषां निरोध:। तत् तत्र अस्मिन् अर्थे एष श्लोको मन्त्र:।।

केवल कर्मियों (की गति) के समान, यहाँ (सूर्यलोक) से लौटना नहीं होता। अत: इसमें अज्ञानी (मात्र कर्मकाण्डी) जनों का प्रवेश निषिद्ध है; अज्ञानी जन के लिये सूर्य का मार्ग निरुद्ध है। इसलिए ये लोग आदित्य, संवत्सर तथा प्राण-रूपी आत्मा को प्राप्त नहीं करते। वहाँ काल-रूप संवत्सर में अज्ञानियों का निरोध है। अगला मंत्र इसी तात्पर्य को बतानेवाला है ।।१०।। **(क्रमश:)**

कर्तव्यपरायण दिव्य बालिका सारदा

ब्रह्मचारी विमोहचैतन्य, रामकृष्ण मठ, नागपुर

सारदामणि मुखोपाध्याय का जन्म २२ दिसम्बर, १८५३ ई. को जयरामबाटी, पश्चिम बँगाल में हुआ था। श्रीरामचन्द्र मुखोपाध्याय एवं श्रीमती श्यामासुन्दरी देवी की वे प्रथम सन्तान थीं। अपनी जमीन से परिवार के भरण-पोषण के लिए पर्याप्त अन्न (धान) न होने के कारण उनके पिता यजमानी और कपास की खेती करते थे। कुछ बड़ी होने पर सारदा अपनी माँ के साथ कपास की खेत में सहायता करने लगीं। दोनों मिलकर रुई से जनेऊ बनाकर परिवार के लिए आवश्यक सामग्री जुटा देती थीं। सारदा बचपन से ही कर्तव्यनिष्ठ थी, वह अपने भाइयों को आमोदर नदी में नहाने ले जाती थीं, जो उनके लिए मानो साक्षात् गंगा थी। वे बचपन में पशुओं के लिए घास काटती थीं और मजदूरों के लिए लाई ले जाती थीं। बाल्यावस्था में वे प्रसन्न कुमार, चचेरे भाई रामनाथ के साथ कभी-कभी पाठशाला जाया करती थीं, जिससे उन्होंने थोड़ा-बहुत पढ़ना सीख लिया था।

वे सरलता की प्रतिमूर्ति थीं। उनका खेतों में किसी से कभी झगड़ा नहीं हुआ। दूसरों के बीच झगड़ा होने से वे प्राय: उनका समझौता करा देती थीं। वे काली और लक्ष्मी की मूर्ति बनाकर फूलों और बेलपत्रों से उनको पूजती थीं ।

सारदा बचपन से ही बुद्धिमती, शान्त और शिष्ट प्रवृत्ति की थीं। वे कार्य करने में अधिक उत्साही थीं, उन्हें किसी कार्य के लिए कभी कहना नहीं पड़ता था, बल्कि वे सुनियोजित तरीकों से सभी कार्यों को सम्पन्न करती थीं। बहुत कम उम्र में कभी-कभी वे रसोई बनाने जैसे कठिन कार्य भी करती थीं। अन्य बच्चियों की अपेक्षा उनकी बुद्धि और कार्य करने की क्षमता अधिक तो थी, परन्तु उनके हाथ अभी भी इतने बड़े कार्य करने हेतु सुदृढ़ नहीं हुए थे। अत: भारी बर्तनों को उतारने में उनके पिता उनकी सहायता कर देते थे। अन्य कार्यों के लिए उन्हें तालाब से जल भी लाना पड़ता था और इस प्रकार उन्होंने घड़े के सहारे तैरना भी सीख लिया।

सारदा की बाल्यलीला बड़ी विलक्षण थी, क्योंकि उनका बचपन और शैशव उनके अनजाने में ही दिव्य एवं अलौकिक शक्ति से ओतप्रोत था। बचपन में उनके समान एक लड़की उनके साथ-साथ रहती हुई सभी कार्यों में सहायता करती, हास्य-विनोद करती, लगभग दस वर्षों तक ऐसा होता रहा, परन्तु जब भी कोई दूसरा आता, तो वह उसे नहीं देख पाता था। जब वे चारा काटने के लिए जातीं, तो देखतीं कि एक बालिका घास काट रही है और एक गुच्छा काटने के बाद एक ओर रखने पर देखतीं कि उस बालिका ने दूसरा गुच्छा काट रखा है। इससे यह दृष्टिगोचर होता है कि सारदा की बाल्यलीला मानवत्व और देवत्व का अनूठा सम्मिश्रण था। लेकिन सारदा ने स्वयं को मानवी रूप में ही प्रकट किया।

भूखमरी के कारण लोग भोजन करने की आस में उनके घर आते थे। उनके पिता धान में उड़द की दाल मिलाकर खिचड़ी पकाते थे और कहते, 'घर के सभी लोग यही खाएँगे, केवल सारदा के लिए थोड़ा-सा अच्छा चावल पकाया जाए, वह उसे खाएगी।' जब गर्म खिचड़ी पत्तलों पर परोस दी जाती थी, तब वे अपने छोटे-छोटे हाथों से पंखा झलकर भोजन को ठण्डा करती थी।

सारदा बाल्यकाल से ही धान कूटना, जनेऊ बनाना, पशुओं को चारा देना, रसोई बनाना जैसे कार्य करती थीं। वे कर्मव्यस्त, स्नेहशील, सरल, सुशील तथा करुणा एवं कुशल गृहस्वामिनी जैसे सद्गुणों से ओतप्रोत थीं, जो भविष्य में मातृत्व की महानता की प्रतीक श्रीमाँ सारदा देवी के रूप में लाखों लोगों के हृदयों में विराजमान हुईं और अपनी स्नेहछाया से जनसाधारण का कल्याण किया।

ये सारदा ही परवर्तीकाल में भगवान श्रीरामकृष्ण देव की लीलासहधर्मिणी तथा उनकी प्रथम शिष्या भी हुईं। ये वही सारदा हैं, जिनकी आज्ञा को जगत् विख्यात स्वामी विवेकानन्द अपने सिर पर रखते थे। २१ जुलाई, १९२० को उन्होंने अपना लीलासंवरण किया।

मानवत्व और देवत्व के अनूठे सम्मिश्रण से युक्त उनकी बाल्यलीला से हम प्रेरणा लें और अपने माता-पिता की अच्छा-खराब सभी परिस्थितियों में उनकी सेवा-सहायता करते हुए अपने जीवन को सारदा जैसा गौरवान्वित करके धन्य करें! श्रीमाँ सारदादेवी हम सब पर अपनी अनुपम कृपा बनाए रखें और समस्त मानव का कल्याण करें। ○○○

सारगाछी की स्मृतियाँ (९९)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

२०-०२-१९६४

ब्रह्मचारी वि...चैतन्य प्रेमेश महाराज के अतीव स्वजन हैं और उनके स्नेह को पाकर धन्य हैं। वे एक स्कूल के प्रधानाध्यापक हैं। वे किसी प्रकार, किसी कार्य से केवल प्रेमेश महाराज का दर्शन करने आए हैं। महाराज की अस्वस्थता का समाचार पाकर भी उनका यहाँ आना सम्भव नहीं हो रहा था। इसीलिए उन्हें अपने निकट पाकर प्रेमेश महाराज बहुत प्रसन्न हैं।

महाराज – मैं कई बार रात में व्याख्यान देता हूँ। वि... चैतन्य शैक्षणिक क्षेत्र में है, लगता है, उससे दो-चार बातें कहने से काम हो सकता है। मेरे दीर्घकाल के अनुभव का फल है आत्मविश्वास। प्रत्येक नवयुवक, जो साधु होंगे, उन्हें सर्वप्रथम यह सिखाना होगा कि देह-प्राण-मन-बुद्धि क्या है? मैं इस अन्तिम समय में समझा हूँ। निवारक उपाय ही ठीक प्रक्रिया है। साधु प्राणशक्ति को इस प्रकार रखेगा, जिससे उसे बीमारी का उपचार न कराना पड़े। अपने बीच किसी नए के आने पर हम क्रुद्ध हो उठते हैं। जिस समुदाय में व्यक्ति का ध्यान नहीं रखा जाता, वहाँ प्रगति असम्भव है। अभी वर्तमान समय में भारत में यह सम्भव नहीं है।

यह रा... यदि साधु न भी हो सके, तो प्रशिक्षित कर इसे एक प्रथम श्रेणी का कार्यकर्ता बनाया जा सकता था। साधु होने के लिये पूर्वजन्मों का कर्म (संस्कार) रहना चाहिए।

केवल साधु ही क्यों, जीवन के हर क्षेत्र में प्रशिक्षण चाहिए, उन्नति होनी चाहिए। बचपन से ही तुम सीखोगे कि 'रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि।'' तुम शत्रुनाश करो अर्थात् ऐसी अनुकूल परिस्थिति बना दो, जिससे शत्रुओं का नाश हो। भिन्न-भिन्न क्षेत्र में शत्रु भी विभिन्न प्रकार के हैं। छात्र जीवन में युवकगण प्रोफेसर बनना चाहते हैं। पिताजी उसे इंजीनियर बनाना-चाहते हैं, तो वहाँ पिता शत्रु है। युवक संन्यासी होना चाहता है, किन्तु माता-पिता उसमें बाधा देते हैं, तो वहाँ वे शत्रु हैं। छात्रों का भविष्य शिक्षक, छात्र और अभिभावक तीनों मिलकर ठीक करेंगे। गृहस्थ जीवन में भी यह सीखना होगा, जिससे सुख-शान्ति से दस लोगों के बीच प्रसिद्धि प्राप्त करके रह सकूँ। संन्यास-जीवन का गौरव क्या है? जिससे संन्यास का भाव ठीक-ठीक सुरक्षित रख सकूँ, कम-से-कम साधुता का अभिमान।

स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज

महाराज की इस शोचनीय शारीरिक अवस्था में भी उनका सजग मन किस प्रकार क्रियाशील था, उनके द्वारा १-३-१९६४ को र... महाराज को लिखित पत्र, इसका एक नमूना है –

श्रीरामकृष्ण

वाराणसी
१-३-१९६४

प्रिय वि... चैतन्य,

तुम्हारा पत्र पाकर बहुत ही आनन्दित हुआ। किन्तु मैं अपना अभिप्राय लिखवाने में असमर्थ हूँ। यदि तुम छुट्टी में आ सको और यदि तब मैं भी सजग रहूँ, तो मुख से कहने का प्रयास करूँगा। अपनी माँ को बता दो। हमारी श्रीमाँ ने कहा है – दुख भगवान का दान है। क्योंकि दुख में पड़ने पर इच्छा से हो या अनिच्छा से हो, भगवान को पुकारना होता है।

तुम्हारे सम्बन्ध में हमेशा चर्चा करता हूँ। अपना सब समाचार विस्तृत रूप से बताना। मेरा शरीर पूर्ववत् है। तुम आनन्द में रहो।

मेरी स्नेहिल शुभेच्छा जानना। इति।

शुभाकांक्षी
प्रेमेशानन्द

०२-०३-१९६४

महाराज – तुम दो संन्यासियों को देख रहे हो क्या? एक वर्षा में सिर पर छाता लगाए चले गए और दूसरे कक्ष में प्रवेश कर गए। साधना-जगत में इसी प्रकार दो पथ हैं – एक सिर पर छाता लगाकर धूप और वर्षा में घुमते रहते हैं, इससे बीच-बीच में वर्षा की बौछार से भीग सकते हैं, अभी धूप में घुमने से सर्दी हो सकती है। अन्यथा घर में बैठे रहे। अर्थात् 'विन्दत्यात्मनि यत् सुखम्'। ईश्वर चिन्तन नहीं होता, तप – सहनशक्ति बढ़ाना होता है, जैसे सिर पर छाता लगाकर घूमना।

दोपहर में 'आजि कोकिल कूजने' नामक गीत को दुहराने के बाद महाराज कहने लगे – ''मनुष्य के जीवन में एक-एक घटनाएँ घटती हैं। बचपन की घटना है। तब मैं बहुत छोटा था। घर में कोई नहीं था। कुछ कार्य से लोग बाहर गए थे। मैं अकेले मैदान में सोया था। अचानक देखा कि सूत की तरह का बहुत-सा उड़कर मेरी देह पर आ गिरा। मैंने सुना कि कमल के फूल के नाल में होता है, आँधी से टूटकर उड़ता रहता है। उस समय मेरे मन में 'विस्मृत कितने स्वप्नों में श्रुत' – इस तरह का एक मन को उदास करने का भाव आ गया था। एक अन्य दिन एक बेर के पेड़ के नीचे बेर बीनने गया था। स्वयं ढेला मारकर खाने की सामर्थ्य नहीं थी। अचानक मन में क्या आया, उस समय बसन्तकाल था। याद आ गया कि कुछ दिन पहले एक लड़के ने गाया था – 'किशोरी चलल चलल जाइ श्यामदरशे।' अन्त:करण को व्याकुल कर दिया। सबके मन में इस तरह का एक भाव रहता है, काव्य-चर्चा नहीं करने से पता नहीं लगता है। विशेषत: जो सात्त्विक होते हैं, उन्हें सुन्दर चीजों की एक अनुभूति होती है।''

गीता के दशम अध्याय का पाठ हो रहा है। महाराज ने कहा – ''इस समय विज्ञान में बिजली की शक्ति देख रहे हो! आजकल तो और भी कहते हैं – एटम बम। आणविक ऊर्जा के पूर्व पृथ्वी की अवधारणा (Conception) हास्यास्पद थी। भारतवर्ष को 'जम्बूद्वीप' कहते थे – जामुन के पेड़ की जड़ से जल आकर इस देश से होते हुए गया है – 'हिरितिमि तिनकोणा' (पृथ्वी) – सप्तद्वीपा वसुन्धरा, लवणसमुद्र, क्षीर समुद्र, यही सब ! सिलहट में भूचाल कहते थे। भूकम्प होते ही ब्राह्मण लोग गणना करने बैठ जाते कि किस स्तम्भ के पतन से भूकम्प हुआ। मैं स्कूल में भर्ती होकर इतिहास, भूगोल पढ़कर नास्तिक होनेवाला था। सौभाग्यवश मार्क्सवाद नहीं था। रहने पर तो ब्राह्मणों का यह हाल देख-देखकर मैं मार्क्सवादी हो जाता।

''क्या करोगे! कोई सम्पर्क था नहीं, भिन्न-भिन्न भाषाएँ थीं, फिर ब्राह्मणों में राढ़ी, बारेन्द्र और कुलीन उपवर्ग थे। वैद्यों में कायस्थ वैद्य और ब्राह्मण वैद्य थे। कायस्थों में कुलीन कायस्थ। इतना सब गोलमाल और भाषा का भेद, इसी अवसर का लाभ उठाकर ही तो अँग्रेजों ने बंगाल का विभाजन करना चाहा था।''

०४-०३-१९६४

दोपहर में भोजन करते समय 'श्रीश्रीमायेर कथा' का पाठ हो रहा है। ध्रुव दा हैं। एक स्थान पर भगवान की वाणी की चर्चा की बात लिखी हुई है।

महाराज – देखो, कैसी बात है, कल तुम लोग जो चर्चा कर रहे थे, वह बहुत अच्छा है, भगवान की लीला का चिन्तन बहुत अच्छा है। किन्तु तुम लोगों ने यह जो अ... की बात कही थी, तप करना यह सब देखने में ही बहुत अच्छा है, किन्तु इसमें आन्तरिक जीवन का कोई अनुसन्धान नहीं है, इससे लोगों से बहादुरी मिलती है। किन्तु साधु में त्याग-तपस्या माधुर्य जीवन के चाल-चलन में खिल उठता है, यही साधु की साधुता है। लोक-प्रदर्शन तपस्या नहीं है।

गीता के एकादश अध्याय का पाठ हो रहा है।

महाराज – इस बात को ही ठाकुर एक वाक्य में कहते हैं – ऊँची चाहरदीवारी के बीच में एक गोल छेद है, अर्थात् ठाकुर का चिन्तन करने से ही सब होगा। भक्त उनका ऐश्वर्य नहीं चाहता, उन्हें चाहता है।

०६-०३-१९६४

महाराज – जब भी तुम मुझसे मिलना, तब एक श्लोक सुनाना। मैं मरणासन्न वृद्ध हूँ, मेरे अंतिम समय में गीता का एक-एक श्लोक सुनाना। देखो, तुम लोग किसी बात से भी समझौता मत करना। संन्यास भीतर से होना कठिन है, कम-से-कम गेरुआ पहनकर संन्यास का सच्चा भाव जिससे

शेष भाग पृष्ठ ३३ पर

वर्तमान युवा स्वामी विवेकानन्द का चिन्तन, अनुसरण करें

डॉ. सन्ध्या त्रिपाठी

प्रवक्ता, राजनीतिशास्त्र, महारानी बनारस महिला महाविद्यालय, रामनगर, वाराणसी

राष्ट्रीय युवा दिवस विशेष

किसी भी राष्ट्र के विकास में युवा वर्ग की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, क्योंकि राष्ट्र के आधार स्तम्भ युवा वर्ग ही हैं। वे हमारे समाज के सबसे जागरूक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। किसी भी राष्ट्र के बच्चे देश का भविष्य हैं और युवा वर्तमान हैं। भारत जैसे विकासशील देश में इनका महत्त्व कई गुना बढ़ जाता है। स्वामी विवेकानन्द एवं अन्य विचारकों ने भी युवा वर्ग को बहुत महत्त्व दिया है। वे युवा वर्ग को राष्ट्र की रीढ़ मानते थे। स्वामीजी का युवकों से अपार प्रेम था। वे यौवन को संकल्पों तथा भावनाओं से भरपूर अवस्था मानते थे। उन्होंने वर्तमान युवाओं को सन्देश दिया है कि उन्हें अपने जीवन का एक उद्देश्य निश्चित कर लेना चाहिए और हमें ऐसा प्रयास करना होगा, ताकि उनके भीतर जगी हुई प्रेरणा तथा उत्साह ठीक पथ पर संचालित हो।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा है, "भौतिक उन्नति तथा प्रगति प्रशंसनीय है, परन्तु देश जिस अतीत से भविष्य की ओर जा रहा है, उस अतीत को अस्वीकार करना निश्चय ही निर्बुद्धिता का परिचायक है। अतीत की नींव पर ही राष्ट्र का निर्माण करना होगा। युवा वर्ग में यदि अपने विगत इतिहास के प्रति चेतना न हो, तो उनकी दशा प्रवाह में पड़े लंगरहीन नाव के समान होगी। ऐसी नाव जो कभी अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँचती। इस महत्त्वपूर्ण बात को सदैव स्मरण रखना होगा।"[१]

स्वामीजी ने इस बात पर बल दिया कि अतीत की नींव के बिना सुदृढ़ भविष्य का निर्माण नहीं हो सकता। अतीत से ही भविष्य को जीवनी शक्ति मिलती है। राष्ट्र जिस आदर्श को लेकर अब तक बना हुआ है, वर्तमान युवा पीढ़ी को उसी आदर्श की ओर अग्रसर करना होगा, ताकि वे देश के महान अतीत के साथ सामंजस्य बनाकर लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सकें।

युवा पीढ़ी को अपना लक्ष्य निर्धारित करने के पश्चात् कर्मशील बनना होगा, क्योंकि कर्मों से ही पहचान बनती है। आज भविष्य की युवा पीढ़ी को आगे जाना है। जब वे आगे बढ़ेंगें, तभी राष्ट्र भी आगे बढ़ेगा और उसका विकास होगा। स्वामी विवेकानन्द ने भी युवाओं को भारत को विकसित एवं संगठित करने के लिए कर्म करने की आवश्यकता पर बल दिया है। इस क्षेत्र में उन्होंने युवाओं की भूमिका को अधिक महत्त्व दिया। उन्होंने युवकों से कहा – "उत्साह से हृदय भर लो और सब जगह फैल जाओ। काम करो, काम करो ... पचास सदियाँ तुम्हारी ओर देख रही हैं, भारत का भविष्य तुम पर निर्भर है। काम करते जाओ।"[२] उन्होंने युवकों के भविष्य-निर्धारण का यही उचित समय बताते हुए कहा – "अभी इस भरी जवानी में, इन नये जोश के जमाने में ही काम करो, जीर्ण- शीर्ण हो जाने पर काम नहीं होगा। काम करो, क्योंकि काम करने का यही समय है। सबसे अधिक ताजे, बिना स्पर्श किए हुए और बिना सूँघे फूल ही भगवान के चरणों पर चढ़ाये जाते हैं और वे उसे ही आत्मसात् करते हैं। अपने पैरों पर स्वयं खड़े हो जाओ, देर न करो, क्योंकि जीवन क्षणस्थायी है। वकील बनने की अभिलाषा आदि से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य करने हैं। तथा इससे भी ऊँची अभिलाषा रखो और अपनी जाति, देश, राष्ट्र और समग्र मानव समाज के कल्याण के लिए आत्मोत्सर्ग करना सीखो।"[३] इसी सन्दर्भ में उन्होंने आगे कहा, "बच्चो, तुम्हारे लिए नैतिकता तथा साहस को छोड़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। इसके सिवाय अन्य कोई धार्मिक मत-मतान्तर तुम्हारे लिए नहीं है। कायरपन, पाप, असत् आचरण तथा दुर्बलता तुममें एकदम नहीं रहनी चाहिए, बाकि आवश्यक वस्तुएँ स्वयं आकर उपस्थित होंगी।"[४]

स्वामी विवेकानन्द जी ने इस बात पर बल दिया कि व्यक्ति को कर्मशील बनने के लिए उसका शारीरिक रूप से शक्तिशाली होना आवश्यक है। लेकिन हमारी वर्तमान युवा पीढ़ी शक्तिहीन, धैर्यहीन, ईर्ष्या-द्वेष-अहंकार से युक्त तथा तमोगुणमयी हो गयी है। अत: हमें उसे शक्तिशाली बनाना होगा। इसके लिये युवाओं को स्वामी विवेकानन्द का चिन्तन करना चाहिए। स्वामीजी कहते हैं, "प्रथम तो हमारे युवकों को बलवान बनाना होगा। धर्म पीछे आयेगा। हे मेरे युवक बन्धु! तुम बलवान बनो, यही तुम्हारे लिये

मेरा उपदेश है। गीता-पाठ करने की अपेक्षा तुम्हें फुटबाल खेलने से अधिक सुख मिलेगा। मैंने अत्यन्त साहस से ये बातें कही हैं और इनको कहना आवश्यक है, क्योंकि मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ।''[५]

शारीरिक बल के साथ मानसिक बल को अर्जित करने के लिये स्वामीजी ने ब्रह्मचर्य के पालन करने पर बहुत जोर दिया। वे नवयुवकों को बाल ब्रह्मचारी महावीर हनुमानजी को अपना आदर्श बनाने और हनुमानजी के गुणों को आत्मसात् करने का उपदेश देते हुए कहते हैं – ''महावीर के चरित्र को ही तुम्हें इस समय आदर्श मानना पड़ेगा। देखो न, वे राम की आज्ञा से समुद्र लाँघकर चले गये।... महाजितेन्द्रिय, महाबुद्धिमान दास्यभाव के उस महान आदर्श से तुम्हें अपना जीवन गठित करना होगा, वैसा करने पर दूसरे भावों का विकास स्वयं हो जायेगा। दुविधा छोड़कर गुरु की आज्ञा का पालन और ब्रह्मचर्य की रक्षा, यही है सफलता का रहस्य। ...एक हनुमानजी के जैसा सेवाभाव और दूसरा इस प्रकार भयभीत कर देनेवाला सिंह जैसा विक्रम!''[६]

स्वामी विवेकानन्द ने शारीरिक एवं मानसिक रूप से शक्तिशाली होने के साथ-साथ उचित शिक्षा पर बल दिया क्योंकि आज की शिक्षा में आदर्श-मूल्य, नैतिकता, सेवा, तपस्या का कोई स्थान नहीं है। उनका कहना था कि यदि शिक्षा व्यक्ति के अन्दर श्रद्धा, साहस, सत्य के प्रति निष्ठा, आत्मसंयम आदि समस्त गुणों को विकसित नहीं करती, तो वह शिक्षा व्यर्थ है। अत: उन्होंने सकारात्मक शिक्षा का समर्थन किया। उनका मत था कि समस्त ज्ञान मनुष्य के भीतर विद्यमान होता है, वह केवल अव्यक्त होता है और शिक्षा उसी को व्यक्त करने की प्रक्रिया है।

इससे यही तथ्य सामने आता है कि शिक्षा एक आन्तरिक प्रक्रिया है, जो शिक्षार्थी के अन्दर घटती है और यह उसके अपने स्वरूप का ही हिस्सा होती है। स्वामी विवेकानन्द ने बताया कि वर्तमान समय की शिक्षण पद्धति का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसका व्यक्ति के आन्तरिक व्यक्तित्व से कोई सम्बन्ध नहीं है। उनके अनुसार भारत को यदि हमें विकसित बनाना है और लक्ष्य को प्राप्त करना है तो युवा वर्ग को आगे बढ़ना होगा। इसके लिए स्वामी विवेकानन्द ने युवाओं को अपने अन्दर से ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार को त्यागने का सन्देश दिया। उनका विचार था कि युवा वर्ग अपने अपार धैर्य और उद्यम से ही सफलता प्राप्त कर सकते हैं। उनका मत था, ''सभी के आन्तरिक प्रयास के बिना क्या कोई कार्य हो सकता है? '**उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी:**' (उद्योगी पुरुषसिंह ही लक्ष्मी को प्राप्त करता है।) पीछे की ओर देखने की आवश्यकता नहीं है, आगे बढ़ो। हमें अनन्त शक्ति, अनन्त उत्साह, अनन्त साहस तथा अनन्त धैर्य चाहिए, तभी महान कार्य सम्पन्न होता है।''[७]

वे मानते थे कि भारत का भविष्य युवकों पर निर्भर है और उन्हीं से इसका उद्धार होगा। वे कहते हैं, ''नवयुवको, तुम लोगों के द्वारा ही भारत का उद्धार होने वाला है। तुम इस पर विश्वास करो या न करो, पर तुम इस बात पर विशेष रूप से ध्यान रखो और ऐसा मत समझो कि यह काम आज या कल ही पूरा हो जायेगा। अपनी देह और अपनी आत्मा के अस्तित्व पर जैसा दृढ़ विश्वास है, मेरा वैसा ही अटल विश्वास है।''[८]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि आज राष्ट्र के समक्ष अनेक चुनौतियाँ हैं और उन चुनौतियों को युवा वर्ग ही अपनी सामर्थ्य से दूर कर सकता है। आज युवा वर्ग को समय की गतिशीलता के साथ-साथ आगे बढ़ना होगा और आत्मविश्वास को जाग्रत करना होगा। इसके लिए वर्तमान युवा पीढ़ी को स्वामी विवेकानन्द के सन्देश को आत्मसात् करना होगा। उन्होंने बार-बार युवाओं को उपनिषद का सन्देश दिया – **उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत** – उठो, जागो और लक्ष्य तक पहुँचे बिना रुको नहीं। इसके साथ ही उन्होंने युवकों के फौलादी चरित्र एवं चट्टानी मनोबल की आवश्यकता पर बल दिया। इसी के साथ युवा वर्ग राजनीति, खेल, विज्ञान, पत्रकारिता, आदि सभी क्षेत्रों में आगे बढ़ेंगे तथा आधुनिकीकरण में मूल्यों का संरक्षण करेंगे। युवाओं से यही कहा जा सकता है कि समाज का सबसे सशक्त एवं सजग वर्ग होने के नाते उसके ऊपर अपने को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने के साथ-साथ इस राष्ट्र को विकसित करने के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर करना होगा। युवाओं का अथाह उत्साह एवं अक्षय ऊर्जा ही राष्ट्र की अनेक समस्याओं का समाधान कर सकते है और राष्ट्र को सशक्त बना सकते हैं। ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ : **१.** स्वामी विवेकानन्द और उनका अवदान, पृ. ३८१, **२.** हे भारत! उठो! जागो!, स्वामी विवेकानन्द, पृ.३३, **३.** विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ५, पृ. १९७, **४.** पत्रावली, स्वामी विवेकानन्द, पृ. १५, **५.** वि.सा., खण्ड ५, पृ. १३७, **६.** सार्वलौकिक नीति तथा सदाचार, स्वामी विवेकानन्द, पृ. ९०-९१, **७.** वि. सा., खण्ड ५, पृ. ४८३, **८.** वही, खण्ड ५, पृ. २३५.

साधुओं के पावन प्रसंग (२५)

स्वामी भूतेशानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

१०/०८/१९९७, बेलूड़ मठ, प्रातः ७ बजे

मैं – महाराज, मैं आपसे दो बातें स्पष्ट कर लेना चाहता हूँ। पहला – अभी-अभी मैंने पुस्तक में पढ़ा, स्वामीजी ने बेलूड़ मठ में 'आत्माराम का डिब्बा' को स्थापित करके ठाकुर को उद्देश्य करके कहा था, 'कहिए, आप यहाँ पर विराजित रहेंगे?' स्वामीजी ने ठाकुर की वाणी को सुना, 'रहूँगा'। स्वामीजी इस बात को तीन बार पूछते हैं और ठाकुर तीन बार उत्तर देते हैं। क्या आपने यह बात सुनी है?

स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज

महाराज – नहीं।

मैं – मेरा दूसरा प्रश्न – रामेन्द्रसुन्दर भक्तितीर्थ ने ठाकुर की स्मृति-कथा में लिखा है कि स्वामीजी ने अपने एक शिक्षक से कहा था, "जो राम, जो कृष्ण, वही रामकृष्ण होकर अभी अवतार लिए हैं। एक बार राम रूप, एक बार कृष्ण रूप में पृथक-पृथक मुझे दर्शन दिये हैं। तदुपरान्त वे दोनों रामकृष्ण-शरीर में लीन हो गये।' क्या आपने इसे सुना है?

महाराज – नहीं।

मैं – महाराज, इस प्रकार क्या दिव्य-चरित्र तैयार होते हैं?

महाराज – एक चुटकी नमक के साथ दिव्य-चरित्र को लेना चाहिए।

मैं – बुद्ध और ईसा के शिष्यों में अनेक दिव्य-चरित्र पैदा हुए हैं। ठाकुर की सन्तानों को लेकर भविष्य में अनेक दिव्य-चरित्र तैयार होंगे। तो अभी हमलोग सत्य को कैसे जानेंगे?

महाराज – सत्य को सदैव युक्ति और परम्परा द्वारा प्रमाणित कर लेना होगा। परम्परा अर्थात् शास्त्र। लोगों के मुँह से सुनी हुई बातों की बहुत जाँच कर लेनी होगी। क्योंकि एक ही विषय पर एक व्यक्ति के विवरण दूसरे व्यक्ति से भिन्न होते हैं। वेदान्त में श्रुति-युक्ति-अनुभव के द्वारा सत्य निर्धारित होता है।

११/०८/१९९७ बेलूड़ मठ, प्रातः ७ बजे

इस दिन मैंने महाराज से लीलाप्रसंग से सम्बन्धित कई प्रश्न किया। जिस प्रकार वचनामृत में है, हलधारी दक्षिणेश्वर में ज्ञानोन्मादी (ब्रह्मज्ञानी) के पास गये थे किन्तु लीलाप्रसंग में है हृदय। सही क्या है? महाराज ने उत्तर दिया, "मैं जितना जानता हूँ – वह हृदय थे।" मैंने कहा, "श्रीम-दर्शन में (६/१०५) है, माधवानन्दजी ने श्रीम से यही प्रश्न किया था और श्रीम ने उत्तर दिया था – हलधारी। इसपर माधवानन्दजी ने कहा था, 'इतने दिनों के भीतर ही ठाकुर की जीवनी और उनकी वाणी में भिन्नता होने लगी!' श्रीम ने उत्तर देते हुए कहा, 'इसमें आश्चर्य क्या है? ऐसा होता है। देखिए न बाइबल। चार में से एक के साथ दूसरे का मेल नहीं है।' " भूतेशानन्दजी ने कहा, "वह बुद्धिमानी का उत्तर है – निश्चित नहीं।"

मैं – सांख्य के प्रकृतिलीन पुरुष और वेदान्त के अधिकारिक पुरुष में क्या भिन्नता है?

महाराज – अधिकारिक पुरुष ईश्वरदर्शन के उपरान्त लोकशिक्षा देता है। जितने दिन तक अधिकार रहता है, उतने दिन पुनर्जन्म – एक-दो जन्म चलता है। प्रकृतिलीन पुरुष प्रलयकाल में प्रकृति के साथ लीन हो जाता है और एक कल्प या दो कल्प तक शरीर रखता है।

मैं – क्या नारायण शास्त्री ठाकुर के प्रथम संन्यासी शिष्य थे?

महाराज – हाँ, किन्तु वे हमारे संघ के साधु नहीं हैं।

मैं – कैसे?

महाराज – नारायण शास्त्री तो हमारे संघ में सम्मिलित हुए ही नहीं। वे संन्यास लेकर चले गये। वे स्वयं की मुक्ति के लिए लालायित थे। यह हमारे संघ का उद्देश्य नहीं है।

मैं – गौरी पण्डित एक मन लकड़ी अपनी हथेली पर रखकर होम करते थे। पाश्चात्यवासियों के लिए इस पर विश्वास करना कठिन है।

महाराज – क्या वे लोग बाइबल में लिखित चमत्कार पर विश्वास नहीं करते? वे लोग यदि ईसा मसीह के उन चमत्कारों पर विश्वास कर सकते हैं, तो और एक चमत्कार पर विश्वास नहीं कर सकते?

मैं – शरत महाराज ने लिखा है कि शून्य और पूर्ण दोनों एक ही पदार्थ हैं।

महाराज – शून्य का तात्पर्य विविधता विद्यमान नहीं है और पूर्ण का तात्पर्य विविधता समाप्त हो जाती है और यह एक सचेतन सिद्धान्त द्वारा प्रतिस्थापित हो जाता है।

पूजनीय भूतेशानन्दजी मेरे 'सर्वोच्च न्यायालय' थे। उनका प्रत्येक सिद्धान्त तथ्यपूर्ण, युक्तिसिद्ध, शास्त्रसम्मत और संशयनाशक था। उनकी बातों में दाव-पेंच या जटिलता नहीं थी। वे दूसरों को सन्तुष्ट करने के लिए अपने विचार नहीं देते थे। वे जिस सत्य पर विश्वास करते थे, उसी को कहते थे। नहीं तो कहते, "मैं नहीं जानता।"

१९८६ ई. में मैंने एक लेख – 'श्रीरामकृष्ण पुनरागमन' लिखा था। इसको कई विशिष्ट संन्यासियों को दिखाया, उन लोगों ने इसे प्रकाशित करने के लिए मना किया। उन लोगों का कहना था – कुछ दिन पहले ही तो ठाकुर आये हैं, तुम पुनः ठाकुर को ले आने की बात करते हो। इससे भक्तगण विभ्रान्त हो जायेंगे। जो भी हो, दो दिन ८ और ११ अगस्त, १९९७ ई. को मैंने उस लेख को महाराज के सामने पढ़कर सुनाया। उन्होंने बहुत ध्यान से उसे सुना। तदुपरान्त मैंने महाराज से पूछा, "महाराज, क्या इसे प्रकाशित किया जा सकता है?" उन्होंने कहा, "हाँ, बहुत सुन्दर हुआ है। तुमने तो स्वयं से कुछ लिखा नहीं है, विभिन्न लोगों की बातों को युक्तिसम्मत तथ्यों के रूप में सजाकर लिख दिया है।" मैं बहुत उत्साहित होकर उस लेख की एक पाण्डुलिपि लिखकर उद्बोधन मासिक पत्रिका के सम्पादक (स्वामी पूर्णानन्द) को दिया। उन्होंने उस लेख को उद्बोधन पत्रिका के १००वें वर्ष के द्वितीय अंक में छापा था। तदनन्तर वह 'श्रीरामकृष्ण सान्निध्ये' (बंगला) पुस्तक में प्रकाशित हुआ।

३०/०८/१९९७, बेलूड़ मठ, प्रातः ७ बजे

मठ के साधु-ब्रह्मचारियों को कम-से-कम दिन में एक बार महाराज के साथ हृदय खोलकर बात करने का अवसर मिलता था। कई साधु-ब्रह्मचारियों ने मुझसे कहा है कि वे लोग पूरे दिन उस १५ मिनट के लिए व्याकुल रहा करते थे। महाराज साधुओं द्वारा चुपचाप प्रणाम करके चले जाना पसन्द नहीं करते थे। उन लोगों को उत्साहित करने के लिए कहते, "प्रश्न पूछो।" मैं जितने दिन मठ में था, मैं ही प्रमुख प्रश्नकर्ता था।

मैं – बेलूड़ मठ के नियमावली में 'ठाकुर का मत' का अँग्रेजी में 'The creed' करके अनुवाद किया गया है। यह अनुवाद अच्छा नहीं है।

महाराज – 'ठाकुर का मत' का अर्थ धर्मजीवन के सम्बन्ध में उनका सिद्धान्त है। मत means doctrine -view about spiritual life. The word 'creed' in not clear. (अर्थात् मत का अर्थ सिद्धान्त होता है – आध्यात्मिक जीवन के सम्बन्ध में विचार। 'creed' शब्द का अर्थ स्पष्ट नहीं है।)

मैं – क्रिश्चन में हैं Nicene Creed, Apostolic Creed. Those are very dogmatic views. (अर्थात् ईसाई धर्म में नीसिया पन्थ और एपोसटोलिक पन्थ हैं। वे दोनों बहुत हठधर्मी हैं।)

महाराज – Creed means body of faith. Doctrine and dogma are not good world-narrow view. मत may mean 'in the light of Ramakrishna's teaching.' (अर्थात् पन्थ मतलब विश्वास का शरीर। सिद्धान्त और हठधर्मिता अच्छे शब्द नहीं है, ये संकीर्ण दृष्टिकोण हैं। मत का अर्थ 'श्रीरामकृष्ण के उपदेश के प्रकाश में' हो सकता है।)

निखिलेश्वरानन्द – Is it the philosophy of Ramakrishna? (क्या यह श्रीरामकृष्ण का दर्शन है?)

महाराज – No. Philosopy is something which has very little to do with the spirituality. (अर्थात् नहीं। दर्शन का आध्यात्मिकता से बहुत कम लेना-देना होता है।)

निखिलेश्वरानन्द – Method of teaching? (अर्थात् उपदेश की पद्धति?)

महाराज – Method of teaching is not philosophy, the body of teaching is philosophy. Ramakrishna's method of teaching'- no, it is not clear. (अर्थात् उपदेश की पद्धति दर्शन नहीं है, बताने की पद्धति दर्शन है। 'श्रीरामकृष्ण के उपदेश की पद्धति' – नहीं, यह स्पष्ट नहीं है।)

मैं – Ramakrishna's view? (अर्थात् श्रीरामकृष्ण का दृष्टिकोण ?)

महाराज – View is all right. (अर्थात् दृष्टिकोण सही है।)

महाराज सचल शब्दकोष थे। उनका ज्ञानभण्डार अशेष था। मैंने उनसे बहुत कुछ सीखा है।

इस दिन मन्त्र के सम्बन्ध में मैंने कई प्रश्न किये। मन्त्रशक्ति और मन्त्रचैतन्य क्या हैं? महाराज ने उन सब प्रश्नों का सटीक उत्तर दिया। वे साधक तथा शास्त्रज्ञ संन्यासी थे। इसीलिए उनका उत्तर बहुत सटीक और मर्मस्पर्शी होता था। वार्तालाप के बीच में महाराज ने कहा, ''ब्रह्मानन्दजी को बलराम मन्दिर में मैंने पहली बार दर्शन किया था। तदुपरान्त बहुत बार उनके दर्शन हुए थे। एक दिन वे बलराम मन्दिर के बरामदे में टहल रहे थे। समझ न सकने के कारण उसी समय हमने उनको प्रणाम किया। उन्होंने कहा, 'देखो, आज मेरा पेट ठीक नहीं है।' इसका मतलब उस समय उनकी बातें करने की इच्छा नहीं है।'' मैंने कहा, सत्यप्रकाशानन्दजी भी स्वयं को एकान्त में रखने के लिए एक-दो बातें करने के बाद कहते, 'I shall not detain you.' (अर्थात् मैं तुम्हें नहीं रोकूँगा।)''

भूतेशानन्दजी के गम्भीर चेहरा के पीछे शिशुसुलभ सरलता, कौतुकप्रियता, अकपटता छिपी हुई थी। वे जिस समय कहानी सुनाना आरम्भ करते, उस समय हमलोग हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते थे। ऐसा लगता ये हमारे घनिष्ठ मित्र हैं। एक दिन मैंने महाराज से कहा, ''आपको मैंने ३८ वर्ष पूर्व देखा था। आप अभी भी वैसे ही हैं।'' उन्होंने कहा, ''तुम क्या same (वैसा ही) की कहानी जानते हो?'' मैंने कहा, ''नहीं।'' महाराज ने कहा, ''अच्छा, सुनो। एक ८० वर्षीय वृद्ध अँग्रेजी सज्जन ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के डोरमेटरी (छात्रावास) में उपस्थित हुए। ६० वर्ष पूर्व छात्रावस्था में वे जिस कमरा में थे, उस कमरा को उनको देखने की इच्छा हुई। उनके उस कमरे के दरवाजे को खटखटाने पर एक युवक बाहर आया। वृद्ध के अपने मन की अभिलाषा बताने पर वह युवक आनन्दित होकर उनको कमरे के भीतर ले गया। वृद्ध सज्जन ने चारों ओर देखकर कहा, 'The same old furniture.' तदनन्तर खिड़की के बाहर देखकर उन्होंने कहा, 'The same old view.' अन्त में, आलमारी का दरवाजा खोलने पर उसमें से एक युवती लड़की बाहर निकली। छात्र थोड़ा-सा असमंजस में पड़ते हुए कहा, 'She is my sister.' वृद्ध ने गम्भीर होते कहा, 'The same old story.' '' हँसते-हँसते मेरी मरने जैसी अवस्था हो गयी। प्राचीन और आधुनिक के सम्मिलन ने उनके चरित्र को जीवन्त और आनन्दमय कर दिया था।

३१/०८/१९९७, बेलूड़ मठ, प्रातः ७ बजे

महाराज को प्रणाम करने के पश्चात् हँसते हुए कहा, ''महाराज, आजकल लोग ठाकुर की बातों को विभिन्न प्रकार से उपयोग कर रहे हैं। 'परिवार नियोजन' में ठाकुर के उपदेश देकर प्रकाशित कर रहे हैं, 'श्रीरामकृष्णदेव ने कहा है, एक-दो बच्चा होने पर पति-पत्नी को भाई-बहन की तरह रहना चाहिए।' मैं जब कोलकाता के कॉलेज में पढ़ता था, तब दुर्गापूजा के मण्डप से लॉउडस्पीकर से सुना जाता था – 'श्रीरामकृष्ण ने कहा है कि प्रणाम करने पर प्रणामी देना चाहिए, नहीं तो वह प्रणाम व्यर्थ होता है।' ''

महाराज (मुस्कराते हुए) – तुम मुझे क्या दे रहे हो?

मैंने अपना सिर उनके सामने अर्पण कर दिया। उन्होंने मेरे सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया।

तदुपरान्त उन्होंने एक कहानी सुनाना आरम्भ किया : ''मैं जब किशनपुर में था। स्वामी शुद्धानन्दजी भी वहीं पर थे। एक दिन हमलोगों की universal चाची (एक भक्त महिला) शुद्धानन्दजी से प्रश्न करती हैं, 'महाराज, काशी में मृत्यु होने पर मुक्ति होती है, यह बात क्या सत्य है?' शुद्धानन्दजी ने कहा, 'हाँ, शास्त्र तो ऐसा ही कहते हैं।' चाची ने कहा, 'आपका क्या विश्वास है?' शुद्धानन्दजी ने उत्तर दिया, 'मैं यदि उस पर सच्चे मन से विश्वास करता, तो मैं काशी में जाकर आत्महत्या कर लेता।'''

मैं – महाराज, १९७० ई. में मैंने काशी में ताराप्रसन्न महाराज से यही प्रश्न पूछा था – काशी में मृत्यु होने पर मुक्ति होती है कि नहीं? उन्होंने मुझे बहुत डाँट-फटकार

करते हुए कहा, 'हम सभी वृद्ध संन्यासी यहाँ पर मरने के लिए पड़े हुए हैं और तुम युवक हमें भ्रमित करने का प्रयत्न कर रहे हो?' उन्होंने ठाकुर के दर्शन तथा श्रीश्रीमाँ सारदा की बातों का उल्लेख किया। मैंने कहा, 'शास्त्र कहते हैं, ज्ञानात् मोक्ष:।' उन्होंने बाद में कहा था, 'चेतनानन्द, तुम भी सही और मैं भी सही। भगवान शिव अन्त समय में ज्ञान दे देते हैं।''

तदनन्तर साधु-जीवन के सम्बन्ध में मैंने प्रश्न किया, 'कई संन्यासी शिकायत करते हैं कि उनको बहुत कार्य है, जिससे शास्त्र-अध्ययन और जप-ध्यान के लिए अधिक समय नहीं मिलता।''

महाराज ने कहा, ''कई साधु बहुत कार्य करते हैं, फिर कई साधु कार्य ही नहीं करना चाहते। ऐसा है कि ये सब कार्य के प्रति संन्यासी के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। माधवानन्दजी ने कहा, 'हम किसी प्रकार स्वामीजी की वाणी कर्म और उपासना को समझने में सफल हुए हैं, लेकिन हम कर्म ही उपासना है, इसे स्वीकार नहीं कर सके हैं, ईश्वर में समर्पण करते-करते यह भाव आता है। बारम्बार प्रयत्न करना होता है।''

महाराज ने एक दिन प्रात: साधु-ब्रह्मचारियों को उद्देश्य करके कहा, ''संन्यासियों के लिए बिना कार्य किये भोजन करना अच्छा नहीं। सबको कुछ-न-कुछ कार्य करना चाहिए।'' तदनन्तर हँसते हुए कहा, ''अरे! मैं तो बिना कार्य किये ही भोजन करता हूँ। मैं वृद्ध मनुष्य कुछ भी कार्य नहीं करता हूँ।'' कई संन्यासियों ने कहा, ''महाराज, आप हम सब से बहुत अधिक कार्य करते हैं। आप दीक्षा देते हैं, साधु-भक्तों को उपदेश देते हैं, यह क्या कम कार्य है?''

अन्य एक दिन मैंने महाराज से कहा, ''मठ और मिशन के भविष्य के सम्बन्ध में आपका क्या अभिमत है?'' उस दिन महाराज बहुत उत्साहित होकर ऊँची आवाज में सभी संन्यासियों के सामने कहने लगे, ''ऐश्वर्य ही स-र्व-ना-श लेकर आता है। सुनो, मठ-मिशन में अभी रुपया-पैसा आ रहा है। लोग ठाकुर के कार्य के लिए दान कर रहे हैं। किन्तु हमलोगों में विलासिता न आने पाये। त्याग, वैराग्य और पवित्रता ही साधु जीवन का वास्तविक स्वरूप है। अर्थ (रुपया-पैसा) कई बार अनर्थ की सृष्टि करता है।'' 'सर्वनाश' शब्द अभी भी मेरे कानों में गूँज रहा है। महाराज को इतना उत्तेजित होकर ऊँचे स्वर में बातें करते हुए मैंने कभी नहीं सुना था।

०१/०९/१९९७, बेलूड़ मठ, प्रात: ७ बजे

मैं – मुण्डकोपनिषद् (३/२/९) में है – 'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति।' तो वेदान्त में 'ब्रह्मविद, ब्रह्मविद्वर, ब्रह्मविद्वरीयान्, ब्रह्मविद्वरिष्ठ' क्यों कहते हैं?

महाराज – हमलोग इस प्रकार दूसरों का विचार करते हैं। ब्रह्मविदों में कोई श्रेणी नहीं है। हमलोगों के दृष्टिकोण में भिन्नता है। ठाकुर ने कहा है – किसी ने दूध देखा है, किसी ने दूध के बारे में सुना है, कोई दूध पीकर बलवान हुआ है। किन्तु ब्रह्मज्ञ के सामने सभी समान हैं।

कोई संन्यासी – दूध के उदाहरण में ही तो तारतम्य है।

महाराज – जो ब्रह्म में निमग्न हैं, उनका द्वैत मिट जाता है। वे यह भेद नहीं कर पाते कि वे वरियान हैं या वरिष्ठ।

मैं – महाराज, साधु-जीवन के सम्बन्ध में कुछ कहिए।

महाराज – वह बात कई बार कह चूका हूँ। श्रीरामकृष्ण को सम्पूर्ण हृदय से प्रेम करो, आधे-हृदय से नहीं।

मैं – पाश्चात्य में कई लोग – कोई तलाकशुदा, कोई अवसादग्रस्त, कोई भ्रमित होकर हमारे पास आते हैं। उनके लिए आपका क्या कोई उपदेश है?

महाराज – काम-कांचन ही माया है। वासना के नहीं छोड़ने से कुछ नहीं होगा। माया-मोह के बन्धन को काटने के लिए त्याग की छुरी की आवश्यकता होती है। आँखों में मोतियाबिन्द होने पर ऑपरेशन की आवश्यकता होती है। संसार के भोग-वस्तुओं का त्याग करके अपने आदर्श से प्रेम करना।

मैं – महाराज, आज मैं मठ से अमेरिका चला जाऊँगा। क्या मेरे लिए आपके पास कोई विदाई-सन्देश है?

महाराज – कोई विदाई सन्देश नहीं। मैं नित्य संग चाहता हूँ। मेरे पास 'आना है, जाना नहीं।' तुम हमलोग से बहुत दूर जा रहे हो, किन्तु अपने पास से हमें दूर मत करना। देखना, जिससे हम कभी अलग न हों। हमलोगों से माया मत काटना।

तत्पश्चात् मैंने परिहास करते हुए कहा, ''महाराज, आप कैसे गुरु हैं? ठाकुर ने कहा है – उत्तम वैद्य रोगी की छाती पर बैठकर दवाई खिलाता है, क्या आप शिष्यों की छाती पर चढ़कर ज्ञान दे सकते हैं? महाराज ने हँसते हुए कहा, ''मेरे तो दोनों घुटनों में दर्द है!'' उनकी यह सरल बात

शेष भाग पृष्ठ ३३ पर

अध्ययन से जीवन में विलक्षण परिवर्तन

स्वामी ओजोमयानन्द

रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ, हावड़ा

तपोधन नामक एक ब्राह्मण यौवनावस्था में ही घर छोड़कर जंगल में तप करने के लिए चले गए। उन्होंने वहाँ बहुत से कष्ट सहे, लेकिन अपनी तप-साधना से विलग नहीं हुए। एक दिन वे नदी के किनारे साधना में लीन थे, तभी इन्द्र एक ब्राह्मण का वेश धारण कर वहाँ आए और नदी में रेत के ढेले फेंकने लगे। तपोधन ने पूछा – 'हे ब्राह्मण! आप यह क्या कर रहे हैं?' इन्द्र ने उत्तर दिया - 'नदी में पुल बाँध रहा हूँ।' तपोधन ने हँसकर कहा – 'केवल रेत डालने से ही कैसे पुल बनेगा? इसके लिए पत्थर, चूना, लकड़ियाँ भी तो चाहिए।' तब इन्द्र ने प्रकट होकर कहा – 'तपोधन! ज्ञान के बिना केवल तप से आत्मविकास करने की बात सोचना नदी में रेत के ढेलों से पुल बाँधना है।' यह कहकर वे अदृश्य हो गए। तपोधन को अपनी भूल मालूम हुई और वे ज्ञान-प्राप्ति में लग गए। वस्तुत: शिक्षा हमारा मार्गदर्शन करती है। वह हमारे प्रयासों को दिशा देती है, हमें दक्ष बनाती है और इस शिक्षा का एक प्रमुख माध्यम है – अध्ययन। आइए! इस विषय पर हम गहन अध्ययन करें।

अन्य कार्यों की तरह अध्ययन भी आवश्यक

अधिकांश लोग नौकरी मिल जाने के बाद या व्यवसाय में लग जाने के बाद पढ़ना-लिखना छोड़ देते हैं। उनकी मान्यता यही होती है कि पढ़ाई-लिखाई नौकरी प्राप्त करने के लिए होती है। परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि जीवन को सुचारू रूप से चलाने के लिए अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। अध्ययन हमारे जीवन का दर्पण होता है। जब हम किसी गलत मार्ग पर चलने लगते हैं, तो अच्छी पुस्तकें हमारा मार्गदर्शन करती हैं। अध्ययन हमारे जीवन के प्रश्नों के उत्तर देता है, अन्यथा व्यक्ति प्रलोभन के चलते अनैतिक कार्यों में युक्त हो जाता है। नैतिक और आध्यात्मिक पुस्तकें हमारे जीवन को शान्ति और समृद्ध बनाती हैं। पुस्तकों और मासिक पत्रिकाओं का यही महत्त्व है कि वे हमें समय-समय पर दिशा-निर्देश देते रहते हैं। अन्य कार्यों के समान हमें अध्ययन को भी महत्त्व देना चाहिए। सफल लोगों के जीवन में अध्ययन की विशेष रुचि देखी जाती है। उदाहरण के लिए एक घटना ही लें। 'बात उन दिनों की है, जब १९४७ में स्वतंत्रता के बाद पूर्व बँगाल के नोवाखाली में हिन्दू और मुसलमानों के बीच दंगा हुआ था। श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी सारदेशानन्द जी महाराज वहाँ राहत कार्य करने गए थे। महात्मा गाँधीजी भी नोवाखाली गए थे। महात्मा गाँधीजी की वहाँ स्वामी सारदेशानन्द महाराज से बाँग्ला में श्रीरामकृष्ण-वचनामृत सुनने की इच्छा हुई। महाराज ने पहले दिन गाँधीजी के सामने वचनामृत पढ़ा। अगले दिन जब महाराज गाँधीजी के पास गए, तो उनके सचिव निर्मल बसु ने कहा कि आज गाँधीजी व्यस्त हैं। महाराज वापस लौट गए। उसके अगले दिन जब महाराज वचनामृत पढ़ने गए, तब गाँधीजी ने कहा 'स्वामी जी! आप कल नहीं आये?' महाराज ने कहा, 'मैं आया था, किन्तु आपके सचिव ने कहा कि आप व्यस्त हैं।' तुरन्त गाँधीजी ने कहा, 'स्वामीजी! क्या यह कार्य अन्य कार्यों से कम आवश्यक था?'' (प्राचीन साधुदेर कथा, प्रथम खण्ड, पृ. १३६)

अध्ययन से जीवन का परिवर्तन

शिक्षा हमारे जीवन को तरासती है। शिक्षा के बिना किया गया प्रयास वैसे ही होता है, जैसे अँधेरे में तीर चलाना। ऐसे प्रयासों से असफलता ही हाथ लगती है। यदि कोई व्यक्ति सदैव कर्म में लगा रहे, पर शिक्षा या अध्ययन से दूर

रहे, तो जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में या तो वह भूलें कर बैठेगा अथवा द्वन्द्व में पड़ जाएगा। कभी-कभी एक ही प्रकार के कार्य को करते-करते व्यक्ति निराश भी हो जाता है, उसका उत्साह समाप्त होने लगता है, तब अध्ययन उसके उत्साह को अग्नि देता है।

एक दिन एक युवक ने सोचा कि वह आत्महत्या कर लेगा। वह दिल्ली रेलवे स्टेशन पहुँचा। वहाँ बैठे हुए उसकी दृष्टि एक पुस्तक विक्रय-केन्द्र के बाहर लगे स्वामी विवेकानन्द के चित्र पर पड़ी। स्वामी विवेकानन्द का चित्र उसे बहुत ही आकर्षक लगा। वह वहाँ गया। उसने 'स्वामी विवेकानन्द के विचार और कार्य' नामक एक छोटी-सी पुस्तक खरीदी और पढ़ने लगा। उसे लगा जैसे जीवन का धागा हाथ में आ गया। उसने पढ़कर जाना कि गरीबों की सेवा ही प्रभु की सेवा है और यह सेवा ही पूजा है। इसके बाद उसने निर्णय ले लिया कि अब वह इन्हीं विचारों पर अपना जीवन व्यतीत करेगा। अपने गाँव को ही मन्दिर मानकर वह सेवा में लग गया और अपने गाँव को बदल दिया। इसके बाद राष्ट्र की सेवा के लिए वह समाजसेवी कार्यों में युक्त हो गया। स्वामी विवेकानन्द की एक छोटा-सी पुस्तक को पढ़कर अपना जीवन परिवर्तित करनेवाले इस युवक को आज हम समाजसेवी श्री अन्ना हजारे के नाम से जानते हैं। वे अपने एक साक्षात्कार में कहते हैं, "स्वामी विवेकानन्द की एक किताब हाथ में आयी और जीवन समझ में आ गया। स्वामी विवेकानन्द के विचार आज भी प्रेरणादायक हैं, इसलिए मैं युवाओं से कहता हूँ कि वे ऐसे महापुरुष के जीवन और विचारों को पढ़ें, एकान्त में बैठकर इसका चिन्तन करें, तो उन्हें एक नई ऊर्जा मिलेगी। २६ वर्ष की उम्र में मैंने अविवाहित रहने का निर्णय लिया। पर कभी-कभी स्त्रियों को देखकर या दम्पतियों को देखकर मन धोखा दिया करता था। तब मैं स्वामी विवेकानन्द की पुस्तक पढ़ा करता था और मुझे ऊर्जा मिल जाती थी। इस प्रकार मैं अपने मन पर लगाम लगा लेता था। आज भी मेरा जीवन दागरहित है। स्वामी विवेकानन्द के द्वारा प्राप्त ऊर्जा के द्वारा आज मैं यहाँ तक आ पहुँचा हूँ।" जिस प्रकार श्री अन्ना हजारे के जीवन में स्वामी विवेकानन्द की छोटी-सी पुस्तक ने परिवर्तन लाया, वैसे ही अध्ययन के द्वारा कई लोगों के मन में विचार-क्रान्ति का उद्भव हुआ है। जीवन की परिस्थितियाँ नहीं बदलतीं, परन्तु अध्ययन के माध्यम से उन परिस्थितियों से निकलने का उपाय समझ में आ जाता है, परिस्थितियों से संघर्ष करने की क्षमता आ जाती है और इस प्रकार जीवन में परिवर्तन आने लगता है।

नियमित अध्ययन का महत्त्व

एक बार सन्त एकनाथ के दामाद कुछ खराब संगत में पड़ गये। उनकी बेटी सन्त एकनाथ के पास जाकर अपनी समस्या सुनाती है कि उसके पति जुआ खेलने लगे हैं, शराब पीते हैं और वेश्यालय जाते हैं। तब सन्त एकनाथ ने उसे निश्चिन्त होकर घर जाने को कहा। सन्त एकनाथ दामाद से बोले कि देखो मेरी पुत्री की तुम्हारे प्रति आसक्ति है, क्योंकि वह शास्त्र नहीं जानती। अत: तुम कहीं जाने से पहले उसे थोड़ा गीता पढ़ा दिया करो। दामाद शास्त्र के पण्डित थे। अत: वे तैयार हो गये। वे कहीं जाने से पहले गीता पढ़ाने लगे। धीरे-धीरे उनके दामाद को अपनी गलतियों का ज्ञान होने लगा और उन्होंने अपनी बुरी आदतें छोड़ दी।

पाठकों के मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि जब सन्त एकनाथ के दामाद शास्त्र के पण्डित थे, तो भी वे बुरी संगत में कैसे पड़ गये? जब हम निरन्तर अध्ययन करते रहते हैं, तो हमारा विवेक-विचार हमारी सहायता करता है, पर जब हम अध्ययन छोड़ देते हैं, तो हमारा विवेक-विचार हमसे दूर चला जाता है, तब हम प्रलोभनों से आकर्षित हो जाते हैं।

जीवन में हम बहुत-सी नैतिक बातें जानते हैं, सुनते हैं, सीखते हैं, परन्तु फिर भी हमसे संस्कारवश त्रुटियाँ हो जाती हैं। पर यदि हम बारम्बार उन बातों का अध्ययन करते रहें, तो वह अध्ययन हमें सचेत कर देता है। जिस प्रकार धातु के बर्तन को यदि प्रतिदिन न माँजा जाए, तो उसमें दाग पड़ जाता है। वैसे ही यदि निरन्तर अध्ययन न किया जाए, तो वह विद्या नष्ट होने लगती है। यदि हमने कोई विद्या सीखी है, परन्तु यदि हम उसका अभ्यास न करें, तो उस विद्या को हम भूल जाते हैं। जैसे किसी ने संगीत की शिक्षा ली, पर कई वर्षों तक उसने संगीत का अभ्यास और अध्ययन नहीं किया, तो उससे कई त्रुटियाँ हो सकती

हैं। इस प्रकार किसी विद्या को बनाए रखने के लिए हमें अध्ययन की निरन्तर आवश्यकता होती है। वस्तुत: किसी विद्या में, जब तक उन विचारों में हमारी दृढ़ता नहीं आ जाती या दृढ़ धारणा नहीं हो जाती, तब तक हमें निरन्तर अध्ययन की आवश्यकता होती है।

अध्ययन का अभ्यास

भगत सिंह को बचपन से किताबें पढ़ने का शौक था। कारावास के दिनों में उनके लिखे ऐतिहासिक पत्रों से उल्लेख मिलता है कि वे अपने मित्रों को पत्र लिखकर पुस्तकें लाने को कहते थे। वे स्वयं पुस्तकें पढ़ते तथा अपने क्रान्तिकारी भाइयों को भी पढ़ने को कहते थे। २३ मार्च, १९३१ को शाम में लगभग ७.३३ पर भगत सिंह तथा उनके दो साथियों सुखदेव व राजगुरु को फाँसी दे दी गई। फाँसी से ठीक २ घण्टे पूर्व भगत सिंह के वकील प्राणनाथ मेहता उनसे मिलने पहुँचे। भगत सिंह को उस पुस्तक की प्रतीक्षा थी, जिसे वह अन्तिम समय में पढ़ना चाहते थे। जैसे ही मेहता से भगतसिंह मिले, तो उनसे पूछा कि आप मेरी किताब 'रिवॉल्यूशनरी लेनिन' लाए या नहीं। जैसे ही मेहता ने भगत सिंह के हाथ में किताब सौंपी, वैसे ही वह किताब लेकर तुरन्त पढ़ने बैठ गए। जेल के अधिकारियों ने जब उन्हें यह सूचना दी कि उनके फाँसी का समय आ गया है, तो उन्होंने कहा था – 'ठहरिये! पहले एक क्रान्तिकारी दूसरे से मिल तो ले।' फिर एक मिनट बाद किताब छत की ओर उछाल कर बोले – 'ठीक है, अब चलो।' फाँसी से पूर्व उनके मुख-मंडल पर दुख का कोई चिह्न ही नहीं था, वरन् वे अत्यन्त उत्साहपूर्वक गीत गाते हुए फाँसी के तख्ते पर चले गए। वास्तव में जिस व्यक्ति को पढ़ने का अभ्यास होता है, वह किसी भी स्थान में प्रसन्नतापूर्वक रह सकता है। यह उदाहरण हमारे देश के विभिन्न क्रान्तिकारियों ने सिद्ध कर दिखाया है। अपने कारावास के समय में इन महापुरुषों ने कई महान पुस्तकों का अध्ययन किया और कई महान पुस्तकों को लिखा। उन सबका यह अध्ययन-अभ्यास यह सिद्ध करता है कि कैसे इस अभ्यास के द्वारा वे विषम परिस्थितियों में भी अपने मन को फौलाद की तरह मजबूत रख पाते थे।

शहीद भगत सिंह
२८.०९.१९०७ – २३.०३.१९३१

किसी-न-किसी वस्तु या विचार का आश्रय लेना मन की प्रकृति है। यदि हम उसे अच्छे विचारों में लगाएँ, तो हम उन महान विचारों के द्वारा महान कार्य कर सकते हैं। पुस्तकों के अध्ययन का अभ्यास मन को स्वच्छ, शुद्ध कर सकता है। अध्ययन के अभ्यास से हमें प्रसन्नता, शान्ति, बुद्धि की तीव्रता और अपनी समस्याओं को सुलझाने की क्षमता प्राप्त होती है। अध्ययन का अभ्यास हमें लक्ष्य से भटकने से बचाता है। अध्ययन का अभ्यास उस मित्र की भाँति होता है, जिसे हम अपने साथ सदैव रख सकते हैं, वह एकान्त में भी हमारा सहायक और मार्गदर्शक होता है। अत: हमें चाहिए कि हम समय निकालकर अध्ययन करें अथवा समय मिले, तो अध्ययन का अभ्यास करें।

क्यों और क्या पढ़ें?

उपरोक्त विचारों से हमने यह तो जान लिया कि हमें निरन्तर अध्ययन का अभ्यास करना चाहिए। परन्तु इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण विषय यह है कि हमें कैसी पुस्तकें पढ़नी चाहिए। जिस प्रकार अच्छा भोजन करने से हमारा स्वास्थ्य अच्छा रहता है और दूषित भोजन करने से वह रोगग्रस्त हो जाता है। उसी प्रकार अच्छे विचारों से मस्तिष्क को शक्ति मिलती है और उसके परिणाम महान होते हैं। यदि वह अनर्गल विचारों में व्यस्त रहा, तो उसके परिणाम भी अनर्गल होंगे। कुछ युवा अश्लील पुस्तकें पढ़ते हैं, जिससे उनका मन अश्लील कार्यों में युक्त हो जाता है और वे क्रमश: उसी की ओर बढ़ने लगते हैं। अश्लील पुस्तकें एक प्रकार से नशे की भाँति कार्य करती हैं, जिसकी धीरे-धीरे लत लग जाती है। इस प्रकार एक समय ऐसा आता है, जब वे उससे बाहर निकल पाने में असमर्थ हो जाते हैं। अत: बुद्धिमानी इसी में है कि हम ऐसी पुस्तकों को स्पर्श ही न करें। मन उस कच्चे धागे की तरह होता है, जिसे जिस रंग में रंगा जाए, वह उसी रंग में रंग जाता है। अत: हमें चाहिए कि हम सदैव सत्साहित्य का अध्ययन करें, जिससे हमारे मन में उच्च और प्रेरणादायी विचार विकसित हों। सत्-साहित्य के माध्यम से हम स्वयं मानसिक शान्ति पाते हैं, वहीं दूसरी ओर मानव जाति का भी कल्याण होता

है। इस प्रकार अध्ययन की विषय वस्तुएँ सदैव जीवन के विकास से सम्बन्धित होनी चाहिए।

अध्ययन अहंकारवर्धन या किसी का अपमान हेतु नहीं

समय बिताने के लिए पढ़ने का कोई महत्त्व नहीं होता, क्योंकि उससे हमारे जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आता, बल्कि बहुत से तथ्यों का संकलन मात्र होकर हम एक इनसाइक्लोपीडिया (विश्वकोश) से अधिक और कुछ नहीं बन पाते। अध्ययन कभी भी दूसरों को भाषण देने के लिए या लेख लिखने के लिए नहीं होना चाहिए। यदि हमारा जीवन गठित होता है, तो इस प्रकार के उद्देश्य स्वत: पूर्ण हो जाते हैं। अध्ययन विद्वता प्रदर्शन के लिए भी नहीं होना चाहिए। अध्ययन से कभी किसी का अहंकार नहीं बढ़ता, पर विद्वत्ता दिखाने से या विद्वत्ता दिखाने के लिए अध्ययन करने से अहंकार बढ़ जाता है। अध्ययन तो हमारे अहंकाररूपी अज्ञान को दूर करता है। अत: हमें सत्साहित्य का अध्ययन करके अपने जीवन का गठन करना चाहिए।

अध्ययन का उद्देश्य

'एक आदमी को एक चिट्ठी मिली। उसको उसके किसी आत्मीय ने कुछ चीजें भेजने के लिए लिखा था। जब चीजों के खरीदने का समय आया, तब चिट्ठी की तलाश करने पर भी वह नहीं मिल रही थी। मकान मालिक ने बड़ी उत्सुकता के साथ खोजना शुरू किया। बड़ी देर तक कई आदमियों ने मिलकर खोजा। अन्त में वह चिट्ठी मिल गई। तब उसे खूब आनन्द हुआ। मालिक ने बड़ी उत्सुकता के साथ चिट्ठी अपने हाथ में ले ली, और उसमें जो कुछ लिखा हुआ था, पढ़ने लगा। लिखा था – ५ सेर संदेश भेजियेगा, एक धोती, तथा कुछ अन्य चीजें – न जाने क्या क्या। तब फिर चिट्ठी की कोई जरूरत न रही, चिट्ठी फेंककर संदेश, कपड़े तथा दूसरी अन्य चीजों की व्यवस्था करने को वह चल दिया। चिट्ठी की जरूरत तो तभी तक थी, जब तक संदेश, कपड़े आदि के विषय में ज्ञान नहीं हुआ था। इसके बाद प्राप्ति की चेष्टा हुई। शास्त्रों में तो उनके पाने के उपायों की ही बातें मिलेगी। परन्तु खबरें लेकर काम करना चाहिए। तभी तो वस्तुलाभ होगा।' (श्रीरामकृष्ण वचनामृत ११ मार्च, १८८५)

स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, 'केवल प्रत्यक्ष अनुभव के द्वारा यथार्थ शिक्षा-लाभ होता है। हम लोग भले ही सारे जीवन भर तक विचार करते रहें, पर स्वयं प्रत्यक्ष अनुभव किए बिना हम सत्य का कण मात्र भी न समझ सकेंगे। कुछ पुस्तकें पढ़ाकर तुम किसी मनुष्य में शल्य-चिकित्सक बनने की आशा नहीं कर सकते। तुम केवल एक नक्शा दिखाकर देश देखने का मेरा कौतूहल पूरा नहीं कर सकते। स्वयं वहाँ जाकर उस देश को प्रत्यक्ष देखने पर ही मेरा कौतूहल पूरा होगा। नक्शा केवल इतना कर सकता है कि वह देश के बारे में और भी अधिक अच्छी तरह से जानने की इच्छा उत्पन्न कर देगा। बस, इसके अतिरिक्त उसका और कोई मूल्य नहीं।' (विवेकानन्द साहित्य १/९७-९८)

कुछ लोगों को यह बात अटपटी भी लग सकती है, अधार्मिक लग सकती है, अनैतिक लग सकती है। परन्तु यदि विचार करके देखें, तो यह सत्य प्रमाणित होगा। बचपन में हम वर्णमाला की पुस्तक के द्वारा अपनी पढ़ाई प्रारम्भ करते हैं। पर जब हम वर्णमाला सीख जाते हैं, तो उन पुस्तकों की आवश्यकता नहीं होती। जब हम अगली कक्षा में जाते हैं, तब हम जोड़ना, घटाना आदि सीखते हैं। पर सीख जाने के बाद उन पुस्तकों को अपने पास नहीं रखते। इस प्रकार क्रमोन्नति का क्रम चलते जाता है। जैसे-जैसे हम सीखते जाते हैं, पीछे-पीछे उन पुस्तकों को छोड़ते भी जाते हैं। पर अन्त में कुछ ऐसी पुस्तकें हमारे हाथ आती हैं, जिन विचारों की धारणा करने और उन विचारों में दृढ़ होने में हमें बहुत समय लग जाता है। जब बार-बार पढ़कर उन विचारों में हमारी दृढ़ता हो जाती है, तब हमें इन पुस्तकों की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। तब हमें प्रयास और साधना की आवश्यकता होती है। तब प्रत्यक्ष अनुभूति ही हमारा अन्तिम उद्देश्य होता है। इस प्रकार अध्ययन का मूल उद्देश्य अनुभूति को प्राप्त करना है।

ग्रन्थों का सम्मान आवश्यक

अब पाठकों के मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या अनुभूति के पश्चात पुस्तकों का हमें अपमान करना चाहिए। नहीं, कदापि नहीं! जिन सीढ़ियों पर चढ़कर हम छत तक पहुँचते हैं, वे सीढ़ियाँ हमारी सहायक थीं। अब उनकी आवश्यकता नहीं रही, पर उनका हमारे जीवन में महत्त्व तो अवश्य ही था। जिस प्रकार छत पर चढ़ जाने के बाद हम सीढ़ियों को नष्ट नहीं किया करते। वह सीढ़ियाँ दूसरों को छत पर जाने के लिए आवश्यक होती हैं। जो छत पर चढ़ चुके हैं, वे दूसरों को बताते हैं कि इन्हीं सीढ़ियों के माध्यम से तुम ऊपर आ सकते हो। उसी प्रकार उन पुस्तकों का

महत्त्व सदा बना रहता है। जिस व्यक्ति ने प्रत्यक्ष अनुभूति कर ली है, उसके लिए उसकी आवश्यकता तो नहीं रह जाती। परन्तु उस अनुभूति तक पहुँचने के लिए वह सहायक तो हुई थी। इसके पश्चात् वह व्यक्ति दूसरों से यह कह सकता है कि इन पुस्तकों ने मेरी सहायता की थी और अब तुम भी इसका लाभ ले सकते हो। यदि उस व्यक्ति ने किसी नवीन मार्ग का अवलम्बन किया हो, तो अपनी अनुभूति के पश्चात् वह जो कुछ उपदेश देता है, वह एक नए ग्रन्थ के रूप में सामने आ जाता है।

सद्ग्रन्थों का हमारे जीवन में विशेष महत्त्व है। ग्रन्थों के माध्यम से विद्या की परम्परा प्रवाहित होती है। किसी व्यक्ति को कितनी तपस्या के पश्चात् ज्ञान प्राप्त होता है और उन वर्षों के परिश्रम को हम एक ग्रन्थ या पुस्तक के माध्यम से सरलता से पा जाते हैं। ग्रन्थों में अनुभव की बातें संग्रहित होती हैं। वे हमारे जीवन के द्वंद्वों को मिटा देते हैं। इसलिये भारतीय संस्कृति में ग्रन्थों को ईश्वर तुल्य माना जाता है। लगभग २००० वर्ष पूर्व चीन के एक विद्वान ह्वेनसांग भारतीय दर्शनशास्त्र पढ़ने नालन्दा विश्वविद्यालय आये थे। कई वर्ष पढ़ने के बाद, जब वे चीन वापस जाने लगे, तो यहाँ के बहुत-से धर्म-ग्रन्थ भी अपने साथ ले लिए। उन्हें सिंधु नदी के मुहाने तक पहुँचाने के लिए कुछ भारतीय छात्र साथ गए। मार्ग में तूफान आया और नाव में पानी भरने लगा। अब क्या किया जाए? धर्म-ग्रन्थों को और चीनी यात्री को सकुशल पार करने का एक ही उपाय था कि नाव हल्की हो, तब वह पार लगे। इसके लिए भारतीय विद्यार्थी प्रसन्नतापूर्वक नदी में कूद पड़े। उन लोगों ने अतिथि आगन्तुक की तथा ग्रन्थों की रक्षा करने के लिए अपने प्राण त्यागकर अपनी महानता का परिचय दिया। ज्ञान का सम्मान और उसकी सुरक्षा करना भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। वहीं तुर्की शासक बख्तियार खिलजी ने नालन्दा विश्वविद्यालय में आग लगवा दी थी। कहा जाता है कि विश्वविद्यालय में इतनी पुस्तकें थीं कि पूरे ३ महीने तक यहाँ के पुस्तकालय में आग धधकती रही। इतना ही नहीं, उसने अनेक धर्माचार्यों और बौद्ध भिक्षुओं की भी हत्या करवा दी। वस्तुतः यह पुस्तकों का दहन या धर्माचार्यों की हत्या नहीं, वरन् मानवता की हत्या थी। ज्ञान के विरोधी तो आसुरी प्रवृत्ति के लोग होते हैं। मानव जाति को सदैव सभी ग्रन्थों और आचार्यों का सम्मान करना चाहिए और उन्हें सुरक्षित रखना चाहिए। ○○○

पृष्ठ २२ का शेष भाग

ठीक रहे, उसके लिये पूरे मन से प्रयास करो। शास्त्रसम्मत संन्यासी के भाव में रहना। संन्यासी तो बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय होता है, अतः संन्यासी का चाल-चलन ऐसा नहीं होगा, जिससे दूसरों का अनिष्ट हो सके।

कहीं-कहीं ठाकुर को मानो सोने की बंशी और चाँदी का सिंहासन बनाकर दिया था। जब मुझे उसके चोरी होने की सूचना मिली, तो मैं आनन्द से उछल पड़ा। फिर कहीं पर उन ठाकुर को चाँदी का ग्लास दिया था, जो ठाकुर धातु का स्पर्श नहीं कर पाते थे ! अहा ! चोर बाबा धन्य है ! मैं उसकी चरण-धूलि लेता हूँ। परमहंसोपनिषद में है कि संन्यासी जैसे औरतों की ओर नहीं देखेगा, वैसे ही स्वर्ण की ओर भी नहीं देखेगा।

सु.. का १० रुपया जेबकतरा ले गया। वह घर आकर दुखित हो रहा था। उसकी पत्नी बोली – ''हमलोगों को तो कष्ट हो रहा है, किन्तु सोचकर देखो कि उस व्यक्ति को १० रुपये पाकर कितना आनन्द हुआ है।'' **(क्रमशः)**

पृष्ठ २८ का शेष भाग

मेरे मन में चिरकाल के लिए अंकित हो गयी। वे वास्तव में सद्गुरु थे।

अब मैं भक्तों से कहता हूँ, ''सुनो, अधिक उपदेशों का पालन करना नहीं होगा। भूतेशानन्दजी का 'पंचशील' प्रतिदिन अपने जीवन में पालन करने से ही होगा। (१) कभी भी किसी का अनिष्ट मत करो। (२) सत्य का कभी भी त्याग मत करो। (३) किसी को वचन देने पर उसे अवश्य पालन करना, कभी भी झूठ का आश्रय मत लेना। (४) इन्द्रियों का तुम्हें संयम करना होगा। (५) यथासम्भव विलासिता का त्याग करके साधारण जीवनयापन करना।''

उस दिन दोपहर भोजन के पूर्व पूजनीय महाराज से विदाई लेने के लिए पुनः गया। उन्होंने मेरे मस्तक को अपनी छाती से लगाकर उन्मुक्त हृदय से आशीर्वाद दिया। यही मेरा उनका अन्तिम दर्शन था। उनके निरभिमान पवित्र चरित्र और स्नेह-प्रेम का स्मरण करके हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है, आँखों में आँसू आ जाते हैं। **(क्रमशः)**

ज्ञान, कर्म, भक्ति का दिव्य सामंजस्य : विदेहराज का जीवन

सन्त मैथिलीशरण 'भाईजी'

संस्थापक अध्यक्ष, श्रीरामकिंकर विचार मिशन, ऋषिकेश

ज्ञानी जनक में ज्ञान, भक्ति और कर्म का दिव्य सामंजस्य दिखाई देता है। राजा जनक विदेहराज-परम्परा के २५वें सूर्यवंशी राजा थे। मुख्य रूप से ये ज्ञान-प्रधान लोग थे और मिथिला, मगध और भागलपुर आदि इनका कार्यक्षेत्र था। इनके यहाँ संस्कृत और संस्कृति पर शास्त्रार्थ की परम्परा भी थी।

विदेहराज जनक

महाराज जनक के यहाँ बड़े तत्त्वज्ञ महापुरुष ज्ञानार्जन के लिये आते थे। वे ज्ञानी तो थे ही, पर जिनको हम सीताजी के पिता के रूप में जानते हैं, उनके जीवन में ज्ञान का चरम फल भक्ति और समर्पण दिखता है। वे इतने बड़े भक्त और ज्ञानी थे कि जब श्रीराम के वनवास की उन्हें सूचना मिली, तो अयोध्या की तत्कालीन व्यवस्था पर कोई टिप्पणी करने से पहले वे उस महानतम चरित्र का परिचय देते हैं। वे जनकपुर से दो गुप्तचरों को अयोध्या भेजते हैं और कहते हैं कि राम के वन-गमन के बाद यदि श्रीराम के अनुज श्रीभरत का मन राज्य में रम गया हो, तो मैं चित्रकूट जाने का प्रयोजन न करूँ। पर उनके गुप्तचरों ने राम के वियोग में भरत की मनोदशा का जो वर्णन जनक जी से किया, तो महाराज जनक और उनकी पत्नी सुनयना भरत की रामभक्ति की सरिता में बहकर चित्रकूट पहुँच गए। वे चित्रकूट के मार्ग में भरत की रामभक्ति की चर्चा में ही निमग्न थे। वे तो चित्रकूट में महारानी सुनयना से यह तक कहते हैं –

भरत अमित महिमा सुनु रानी।
जानहिं रामु न सकहिं बखानी।। २/२८८/२

भरत के प्रेम की ऐसी महिमा है, जिसे राम जानते तो हैं, पर मुख से बता नहीं सकते हैं।

जनकपुर में अष्टावक्र मुनि ने जनक से कहा था – हे जनक ! ईश्वर ही सारी सृष्टि का एकमात्र निर्माता है। ज्ञानी के द्वारा ऐसा निर्णय कर लेने पर, उसकी संसार से कोई आशा कदापि न होकर अन्दर-ही-अन्दर भक्ति का रूप ले लेती है। उस ज्ञानी के अन्दर समय-समय पर सम्पत्ति और विपत्ति, जो भी आती है, उसको वह और उसकी इन्द्रियाँ शरीर का प्रारब्ध या उसका धातुगत दोष मानकर सदा ही स्वस्थ रहती हैं। ऐसा ज्ञानी अप्राप्त को न तो कभी पाने की इच्छा करता है और न ही कभी नष्ट हुई वस्तु का शोक करता है।

पर आप देखेंगे कि रामचरितमानस में विदेहराज जब रामजी के साथ सीताजी की विदाई करने लगे, तो तुलसीदासजी ने लिखा कि उनका धैर्य जवाब दे गया। इतने बड़े विरागी का वैराग्य कुछ समय के लिये समाप्त हो गया। वे सीताजी को हृदय से लगाकर रोने लगे। महाज्ञानी जनक के ज्ञान की मर्यादा जाती रही। गोस्वामीजी ने ज्ञानी जनक को ज्ञान, भक्ति और कर्म तीनों में शिरोमणि बता दिया और कह दिया कि धन्य हैं जनक! जनकजी का सीताजी को हृदय से लगाकर रोना, ज्ञान और धैर्य का भाग जाना, भक्ति का परिपाक था।

धैर्य प्रेम का विरोधी है अर्थात् बेटी को विदा करते समय यदि भाव न आए, तो वह न तो ज्ञानी होगा और न ही पिता। उस समय तो रोना और बिलखना ही ज्ञान और भक्ति का परिपाक है। गोस्वामीजी ने लिखा –

सीय बिलोकि धीरता भागी।
रहे कहावत परम बिरागी।।
लीन्हि रायँ उर लाइ जानकी।
मिटी महामरजाद ग्यान की।।
समुझावत सब सचिव सयाने।
कीन्ह बिचारु न अवसर जाने।। १/३३७/५

लोग समझा रहे हैं, तो भी नहीं समझ पा रहे हैं। बार-बार बेटी को हृदय से लगाकर विलाप कर रहे हैं और पालकी मँगाने का आदेश दे रहे हैं।

इस प्रकार देखते हैं कि विदेहराज जनकजी के जीवन में ज्ञान, भक्ति और कर्म का अद्भुत सामञ्जस्य दृष्टिगोचर होता है। ○○○

गीतातत्त्व-चिन्तन (१३)

नवम अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ९वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है – सं.)

जो जिसकी उपासना करता है, उसे ही पाता है

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्।।२५।।

देवव्रता: (देवताओं को पूजनेवाले), देवान् यान्ति (देवताओं को प्राप्त होते हैं) पितृव्रता: (पितरों को पूजनेवाले), पितृन् यान्ति (पितरों को प्राप्त होते हैं) भूतेज्या भूतानि यान्ति (भूतों को पूजनेवाले भूतों को प्राप्त होते हैं), मद्याजिन: (मेरा पूजन करनेवाले) माम् अपि (मुझको ही) यान्ति (प्राप्त होते हैं)।

– देवताओं को पूजनेवाले देवताओं को, पितरों को पूजनेवाले पितरों को, भूतों को पूजनेवाले भूतों को और मेरा पूजन करनेवाले भक्त मुझको ही प्राप्त होते हैं।

भगवान कहते हैं – अर्जुन, जो देवताओं का व्रत करते हैं, जो देवताओं की उपासना करते हैं, वे देवताओं को पाते हैं। जो पितरों की उपासना करते हैं, वे पितरों को पाते हैं। जो भूतों की उपासना करते हैं, वे भूतों को पाते हैं और जो मेरी उपासना करते हैं, अर्जुन, वे मुझे प्राप्त करते हैं। इस श्लोक का यह तात्पर्य है। इस श्लोक की व्याख्या और इसके अर्थ भी अनेक किये गये हैं। यान्ति देवव्रता देवान् – जो देवताओं की उपासना करते हैं, वे देवताओं को पाते हैं। क्या तात्पर्य है इसका? देवताओं की उपासना का अर्थ यह हुआ कि हम भगवान से भिन्न देवताओं को मानते हैं। जैसे इन्द्र को माना, किसी शक्ति को माना, वरुण को माना या जैसे हम गणपति को भगवान से भिन्न मानें, या जैसे हम दुर्गा को भगवान से भिन्न मानें। कई लोग उपासना करते हैं, पर उपासना में भाव यह रहता है कि जो सर्वव्यापी ब्रह्म है, वह तो अलग है। गणपति की उपासना जो मैं कर रहा हूँ, यह गणपति सर्वव्यापी भगवान से भिन्न हैं, दुर्गा की उपासना कर रहा हूँ, पर दुर्गा उस सर्वव्यापी भगवान से भिन्न है। मैं दत्तात्रेय की उपासना कर रहा हूँ, यह दत्तात्रेय उस सर्वव्यापी भगवान से भिन्न हैं। ऐसी भावना मनुष्य के मन में होती है और उस भावना के वशवर्ती होकर वह उपासना करता है। जो उसका इष्ट देवता होता है, उस इष्ट देवता को वह सर्वव्यापी ब्रह्म से पृथक् देखता हुआ उसकी उपासना करता है। भगवान कहते हैं कि ठीक है, पर वे यह अन्तर बता दे रहे हैं कि अर्जुन, जो देवताओं की इस प्रकार उपासना करते हैं, वे, देवताओं को प्राप्त होते हैं। जो पितरों की उपासना करते हैं, वे पितरों को प्राप्त होते हैं और जो भूतों की उपासना करते हैं, वे भूतों को प्राप्त होते हैं। इसका तात्पर्य क्या है?

देवयान और पितृयान के मार्ग – मानसिक अवस्थायें

प्राचीन काल में जिस समय गीता की रचना हुई होगी, उस समय परम्परा ऐसी थी। हमलोगों ने दो प्रकार के पथों के सम्बन्ध में सुना – देवयान और पितृयान। मनुष्य मरने के बाद दो प्रकार की गतियों में से जाता है। जब मनुष्य उत्तरायण में मरता है, तो वह देवयान से जाता है तथा सूर्यलोक को जाता है और जब दक्षिणायन में मरता है, तो वह पितृयान से जाता है और चन्द्रलोक को जाता है। जहाँ

कहा गया कि देवताओं को प्राप्त करता है, इसका तात्पर्य देवयान से जाता है। जहाँ कहा गया कि वह पितरों को प्राप्त करता है, तो वह पितृयान से जाता है। भिन्न-भिन्न श्रेणियों के स्वर्ग हैं और ब्रह्मलोक को सबसे श्रेष्ठ स्वर्ग के नाम से पुकारा गया है। कल्पना ऐसी है कि जो अत्यन्त सात्त्विक व्यक्ति होता है, जीवन में शुद्ध कर्म करता है, निष्कामता जिसके जीवन में होती है, जो पवित्र होता है, पर सकाम भाव से भगवान की उपासना करता है, उसके मन में किसी प्रकार की इच्छा होती है, कर्मों के फल पाने की इच्छा होती है, ऐसा व्यक्ति सात्त्विक प्रधान है, जब वह व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त होता है, तो मुक्त नहीं हो जाता। किन्तु 'मैं फलों को भोग करूँ', इस इच्छा के कारण वह ब्रह्मलोक में जाता है। ब्रह्मलोक में जब तक कल्प बना रहता है, तब तक वहाँ आनन्द का उपभोग करता है। जब कल्प का अन्त होता है, तब ब्रह्मलोक भी नष्ट हो जाता है, और यह व्यक्ति मुक्त हो जाता है। इस क्रममुक्ति के मार्ग पर वह चलता है। इसको ही देवयान का मार्ग कहते हैं।

पितृयान का मार्ग है, जिसे चन्द्रलोक के नाम से पुकारा गया, वह भी स्वर्ग है, परन्तु ब्रह्मलोक की अपेक्षा नीचे का स्वर्ग है। ये जो स्वर्ग इत्यादि हैं, ये भिन्न-भिन्न मन के कम्पन की अवस्थाएँ हैं। जैसे मन में एक विशेष प्रकार का कम्पन हुआ, तो मन में जैसा कम्पन होता है, यह संसार वैसा ही दृष्टिगोचर होता है। जैसे कभी-कभी हमारे भीतर अत्यन्त हल्का भाव लगता है। मन में एक विशेष प्रकार का कम्पन है, उस समय आकर कोई दुखद समाचार भी दे दे, तो वह दुखद समाचार हमें उतना व्यथित नहीं करता, पीड़ित नहीं करता। क्यों नहीं करता? क्योंकि हमारा मन एक विशेष कम्पन की स्थिति में है। कभी-कभी ऐसा होता है कि हमारा मन दुःख की स्थिति में होता है। भिन्न कम्पन की अवस्था में होता है, तो कितना भी सुन्दर समाचार आवे, तो भी मन में हर्ष का अनुभव नहीं होता। तो मन के कम्पन की अवस्था पर सुख और दुख निर्भर करता है। यह तो हम प्रत्यक्ष जीवन में देखते हैं कि भिन्न-भिन्न प्रकार से मन की अवस्थाएँ होती हैं। कभी दुःख होता है, कभी सुख होता है। सुख में भी सामान्यत होती रहती है। और दुःख भी कभी तीव्र होता है, कभी हल्का होता है। मन में यह भिन्न-भिन्न परिवर्तन होता रहता है। ठीक इसी प्रकार, मनुष्य जब मृत्यु को प्राप्त होता है, तो शरीर तो नष्ट हो गया। पर उसका जो सूक्ष्म शरीर है, वासनात्मक शरीर, जहाँ तक मन की प्राधान्यता है, वह शरीर बना रहता है। कर्मों के अनुसार या तो वह सुख का अनुभव करेगा या दुख का।

ब्रह्मानन्द सुख-दुख से परे आनन्द की अवस्था

सुख में भी श्रेणियाँ हैं और दुख में भी श्रेणियाँ हैं। जो दुख की श्रेणियाँ हैं, उन्हें हम नरक कहते हैं। जो सुख की श्रेणियाँ हैं, उन्हें हम स्वर्ग के नाम से पुकारते हैं। जो भौतिक दृष्टि से श्रेष्ठ सुख की आत्यन्तिक अवस्था होगी, उसको हमने ब्रह्मलोक के नाम से पुकारा। जो देवयान का रास्ता है, वह मनुष्य को ब्रह्मलोक में ले जाता है। भौतिक दृष्टि से मनुष्य-मन का सबसे उच्च कम्पन, जहाँ पर जाकर मनुष्य आत्यन्तिक सुख का अनुभव करता है।

आनन्द की अवस्था क्या है? जिसको हम शास्त्रों में आनन्द के नाम से जानते हैं, वह आनन्द सुख और दुख दोनों के परे होता है। जो ब्रह्म में स्थित होने की अवस्था है, जो अपने स्वरूप में स्थित होने की अवस्था है। मानो एक ऐसा आनन्द जिसमें न सुख से हमारा कोई प्रयोजन है, न दुख से कोई लेना-देना, जहाँ पर हम मन के समस्त कम्पनों को अतिक्रमण कर चले जाते हैं। उसी को ब्रह्मज्ञान के नाम से पुकारा गया है। इस जीवन में ऐसा ब्रह्मज्ञान होता है, शास्त्रों की ऐसी मान्यता है। मनुष्य अभ्यास करता हुआ मन को एक ऐसी अवस्था में लाकर रख देता है, जहाँ संसार के सुख-दुख उसे तनिक भी छू नहीं सकते। एक ऐसी अवस्था में चला गया जहाँ मन कम्पनरहित हो गया, उसको हम आनन्द की अवस्था कहते हैं। वह एक प्रकार की अनुभूति की अवस्था है। कभी-कभी आपने जीवन में अनुभव किया होगा, जब ऐसा लगा होगा कि आपको अन्दर से ही आनन्द आ रहा है। वह केवल सुख नहीं है। जैसे हमने कुछ अच्छा खाया, तो बड़ा सुख मिला। यह एक प्रकार का सुख है। उसी प्रकार देखने का सुख अलग प्रकार का है। छूने का सुख अलग प्रकार का होता है। परन्तु कभी-कभी अपने आपमें इतना हल्कापन लगता है, अचानक मन में बहुत आनन्द आता है। हर एक व्यक्ति के जीवन में ऐसे क्षण आते रहते हैं, जब वह उस आनन्द की अनुभूति करता है, जिसको वह बता नहीं सकता।

वैसे ही ब्रह्मज्ञान का आनन्द इसी आनन्द का बृहत्तर रूप है। इसमें न तो सुख होता है, न दुख, बल्कि एक प्रकार की शान्ति की अवस्था होती है। यही आनन्द वस्तुतः ज्ञान

का आनन्द है और इसी आनन्द को ब्रह्मज्ञान का आनन्द कहते हैं। यही ब्रह्मानन्द की स्थिति है।

भगवान क्या कहते हैं, अर्जुन, जो मुझे प्राप्त करता है, वह ब्रह्मज्ञान की स्थिति है। वह तत्त्व को प्राप्त कर लेता है। जो मुझे चाहता है, वह मुझे प्राप्त करता है। परन्तु कई लोग ऐसे होते हैं, जो अभी मुझे नहीं चाहते। यों कह लीजिये कि वे सुख की अपेक्षा रखते हैं। भले ही वे सात्त्विक पुरुष हैं। परन्तु उनके मन में कामना है। वे अपनी कामना का उपभोग चाहते हैं। उनके जीवन में सुख की इच्छा बनी हुई है। पर वे अत्यन्त साधु प्रकृति के हैं, अत्यन्त सज्जन हैं, उनके जीवन में सत्त्वगुण की प्रधानता है। ऐसे व्यक्ति जिस समय मृत्यु को प्राप्त होते हैं, वे देवताओं को प्राप्त होते हैं। वे देवयान से जाते हैं और वे ब्रह्मलोक में निवास करते हैं।

कुछ बड़े अच्छे व्यक्ति होते हैं, जिनके जीवन में रजोगुण की प्रधानता होती है। वे उपासक भी होते हैं, परन्तु अपनी उपासना को दिखाना चाहते हैं। ऐसे भी व्यक्ति हैं, जो पूजा तो करते हैं, पर उनकी यह इच्छा होती है कि लोग जानें कि वे पूजा कर रहे हैं। इनको रजोगुणी भक्त कहा गया है। ऐसे लोग जिनके जीवन में पूजा को प्रदर्शित करने की आकांक्षा रहती है, वे मृत्यु के समय पितृयान से जाते हैं। वे चन्द्रयान से जाकर चन्द्रलोक को प्राप्त होते हैं। यही पितरों को प्राप्त होना है। ऐसी कल्पना की गयी है कि पितर लोग वहीं पर अवस्थित हैं। पितृमोक्ष अमावस्या के दिन हम पितरों की जो पूजा करते हैं और भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यंजन अपने पितरों के लिए निवेदित करते हैं, वह उन पितरों की सन्तुष्टि के लिए होता है। ये पितर जहाँ रहते हैं, उसे पितृलोक कहते हैं। जैसे कहा जाता है कि जब भगवान राम ने रावण का वध किया। उसके बाद दशरथजी स्वर्ग से उतरकर आए। वह कौन-सा स्वर्ग था? वे वहाँ पितृलोक में अवस्थित थे।

भूतानि यान्ति भूतेज्या – कुछ लोग तमोगुण प्रधान होते हैं। वे भी हैं तो भक्त, पर उनके भीतर तमोगुण का आधिक्य होता है। वे जीभ को छेद देंगे, तरह-तरह के देव-देवियों की उपासना-पूजा करेंगे, भूत-पिशाचों की उपासना करेंगे। मृतक पर बैठकर तरह-तरह की क्रियाएँ करेंगे। तान्त्रिक साधना करनेवाले बहुत प्रकार के लोग होते हैं, जो भूत-प्रेत को अपने वश में करना चाहते हैं, उनके जीवन में सिद्धियाँ आती हैं। ये लोग भूतों को प्राप्त होते हैं। उन्हें सिद्धियाँ तो अवश्य ही प्राप्त होती हैं, पर ये भूत-पिशाचों के समान होते हैं, उनमें तमोगुण की प्रधानता होती है। ये मरने के पश्चात् कहीं नहीं आते-जाते। वे यहीं रहते हैं। ये तीनों ही भक्त हैं, पर उनमें कामना होती है। कामना किस बात की? जो कर्म हमने किया, उसका फल हमें मिलना चाहिए। उस कर्म के फल से हमें सुख की प्राप्ति हो। ऐसी कामना इन तीनों में रहती है। **(क्रमशः)**

श्रीमाँ सारदा देवी का पत्र

४ जून, १९१७

आनुड़, हुगली, जयरामवाटी

प्रिय बेटा प्रभु,

तुम्हारा पत्र प्राप्त हुआ। तुम मुझे अच्छी तरह याद हो। यह जानकर मैं अत्यधिक आनन्दित हुई कि तुम साधु हुए हो एवं मेरे प्रिय सन्तान राखाल (स्वामी ब्रह्मानन्द) से ब्रह्मचर्य-दीक्षा प्राप्त किए हो। अभी तुमको मेरे पास आने की आवश्यकता नहीं है। राखाल के निर्देश का पालन करो। मुझे विश्वास है कि उनकी कृपा से तुम इन समस्त कठिनाइयों को पार कर लोगे। उनके निकट प्रार्थना करो, वे तुम पर कृपा करेंगे। प्रतिदिन नियमित रूप से ध्यान करना। इससे तुम आध्यात्मिक जीवन में क्रमशः उन्नति करोगे।

प्रिय बेटा, कभी भी हताश नहीं होना। नया मठ आरम्भ हुआ है, यह जानकर अत्यन्त प्रसन्न हुई। आशा करती हूँ कि कुछ दिनों में ही मठ के बाकी सारे कार्य भलीभाँति सम्पन्न हो जाएँगे।

मैं अच्छी हूँ। मैं तुमको स्नेहाशीर्वाद देती हूँ। तुम्हारी जब इच्छा हो, मुझे पत्र लिखना। बँग्ला भाषा नहीं जानते, ऐसा सोचकर दुखी नहीं होना। तुम मेरा आशीर्वाद ग्रहण करना तथा मठ के मेरे सभी सन्तानों को मेरा आशीर्वाद कहना। इति।

आशीर्वादिका
तुम्हारी माँ

पुनश्च : तुम अँग्रेजी में ही पत्र लिखना, परन्तु स्पष्ट अक्षरों में लिखना।

पत्र पानेवाले का नाम और पता :
स्वामी वीरेश्वरानन्द

शिवबा को सम्राट शिवाजी बनानेवाली : राजमाता जीजाबाई

मीनल जोशी, नागपुर

जीजाबाई और शिवाजी

१२ जनवरी, १५९८ को म्हालसाबाई और लखुजी राजे के घर जीजामाता का जन्म हुआ। सुनयना जिजाऊ बचपन से प्रखर बुद्धिमती, धैर्यशाली, जिज्ञासु चपल थी। लखुजीराजे जाधव अपनी सुलक्षणी कन्या के गुणों को हमेशा प्रोत्साहन देते थे। जिजाऊ के पाँचवे जन्मदिन पर पिता ने अपनी बेटी को स्वर्ण-रत्न जड़ित म्यान में धारदार तलवार भेंट की थी। उन्होंने जिजाऊ को संस्कृत, हिसाब-किताब रखना आदि के साथ घुड़सवारी, तलवारबाजी आदि सिखाया। जिजाऊ की ग्रहणशीलता असाधारण थी। जिजाऊ आस-पास की परिस्थिति और राजकीय स्थिति का सूक्ष्म अवलोकन करती थी। अपने पिता के साथ चर्चा करती थी। उसके मन में बार-बार प्रश्न उठता था कि निष्पाप लोगों पर होनेवाले अत्याचारों का प्रतिकार कोई क्यों नहीं करता? उनका संरक्षण क्यों नहीं होता?

ई.स. १६०५ में जिजाऊ का विवाह शहाजी राजे भोसले के साथ हुआ। तब उनके पास पुणे, सुपे परगना की जागीर थी। निजामशाह शहाजी राजा के पराक्रम पर बहुत खुश था। किन्तु जिजाऊ इससे प्रसन्न नहीं थीं। इधर शहाजी राजा के मन में भी स्वतन्त्र न्याय राज्य की अभिलाषा थी। किन्तु इसके लिए उन्हें मराठा सरदारों की सहायता मिलना दुष्कर था। अपनी स्वतन्त्र पराक्रमी वृत्ति के कारण इस दरबार से उस दरबार वे जाते रहते थे।

दगाबाज निजाम ने दरबार में जाधवों के पुत्रों की हत्या करवाई। जिजाऊ के मन में अत्याचारियों के प्रति असंतोष अधिक दृढ़ हुआ। आदिल शाह का सरदार मुरार जगदेव ने शहाजी राजा के पुणे जागीर को पूर्ण ध्वस्त कर दिया। खेती-बाड़ी सब जला दिये। गधों से खेत में हल चलाए। तब जिजाऊ ने अपने उदरस्थ बच्चे को इन अत्याचारों का प्रतिकार करने की शिक्षा आरम्भ की। उन्होंने माँ भवानी से प्रार्थना की – ''हे माते! मेरे उदर से अत्याचारों का प्रतिकार करने वाले, धैर्यशाली, प्रजा को न्याय और अधिकार देनेवाले वीर पुरुष का जन्म हो।'' जिजाऊ की यह राष्ट्रहितार्थ प्रार्थना सभी माताओं के लिए प्रेरक है।

१९ फरवरी, १६३० को शिवनेरी पर शिवबा का जन्म हुआ। जिजाऊ ने शिवबा के लिये मिट्टी के छोटे-छोटे हाथी, घोड़े और किले बनवाए। जिजाऊ शिवबा को अपने वैभव-सम्पन्नता की, श्रीराम के पराक्रम की, पाण्डवों के धर्म-रक्षण की कहानियाँ सुनाती थीं। इन कहानियों को सुनकर शिवबा में पराक्रम का भाव संचारित होता था।

इधर आदिलशाह ने जान-बूझकर शहाजी राजा को दूर कर्नाटक (बंगलुरु) भेज दिया। तब शहाजी राजा ने दादोजी कोंडदेव के ऊपर जिम्मेदारी सौंपकर जिजाऊ और शिवबा को पुणे भेजने का निश्चय किया। उन्हें जीजाबाई के कर्तृत्व और तेजस्विता पर पूर्ण विश्वास था।

जीजाबाई अपने साजो-सामान के साथ पुणे पहुँचीं, तो लोगों ने उन्हें लुटेरा समझकर घर के दरवाजे बन्द कर दिए। जीजा बाई को इससे बहुत पीड़ा हुई। वह अपनी पालकी से उतरीं और उन्होंने लोगों के पास जाकर उनसे बातें कीं। उन्हें आश्वस्त किया कि वह उनके कल्याण के लिये आयी हैं। शिवबा उनके अपने राजा हैं। बाल राजा के हाथों उन्होंने बच्चों को मूँगफली और गुड़ दिया तथा स्त्रियों को बाजरी और बेसन का आटा वितरित किया। सभी को साग्रह पुणे के बाड़े में आने का निमंत्रण दिया। दूसरे दिन बाल शिवाजी ने माँ से प्रश्न किया, 'आपने सबको सोने की मोहरें क्यों नहीं दीं?'' जीजाबाई ने सटीक उत्तर देते हुए कहा, ''बालराजे, आवश्यकता को समझते हुए सहायता करनी चाहिए। यदि हम उन्हें स्वर्ण मुद्रा देते, तो गरीब लोगों पर चोरी करने का आरोप लगता। उन्हें सजा दी जाती। हम इन पीड़ित लोगों को अपना अनाज स्वयं उत्पन्न करने तथा स्वयं का संरक्षण करने के लिये समर्थ बनाएँगे।''

लोग अपनी समस्या और कष्ट लेकर राजमाता जीजाबाई के पास आते थे। अपने सुख-दुख सुनाते थे। जीजाबाई उनसे कहतीं, 'आप मुझे अपनी 'माता' समझिए।'' लोग उन्हें जीजा माता कहने लगे। जीजा माता का मातृत्व केवल अपने बच्चे तक ही सीमित नहीं था। उनका मातृत्व सम्पूर्ण प्रजा के लिए था।

जीजामाता ने किसानों के लिए बीज, औजार, बैल आदि की व्यवस्था की। शिवबा के साथ स्वयं हल चलाकर उनका डर दूर किया। लोगों के गुण-कौशल को जानकर उन्हें विभिन्न कार्यों का प्रशिक्षण दिया। लोहार, सोनार, कुम्हार आदि सभी के हाथों को काम देकर उन्हें अपना बनाया। स्त्रियों के संरक्षण हेतु सशस्त्र सैनिकों का पहरा बिठाया। जिजाऊ शिवबा को सामान्य चुनौती देनेवाले बच्चों के साथ खेलने भेजती थीं। वे सब शिवबा के अच्छे मित्र बन गए। इन मित्रों ने भविष्य में शिवबा के स्वराज्य के लिये अपने प्राण न्यौछावर किये। जिजाऊ ने बच्चों को बुलाकर उनके कुश्ती, तलवारबाजी आदि सिखाने की व्यवस्था की। साथ में उनकी अच्छी खुराक का प्रबन्ध भी किया। जिजाऊ शिवबा को मित्रों के साथ जंगलों, पहाड़ों में घूमने भेजती थीं, जिससे उन्हें गुप्त मार्गों की जानकारी हो सके।

किन्तु बीजापुर दरबार में शहाजी राजा की हँसी उड़ाई जाने लगी। शहाजी राजा का पुत्र गरीबों के साथ घूमता है। सुनकर दादोजी पंत को दुख हुआ। उन्होंने जीजामाता से कहा, ''अब शिवबा राजे बड़े हो गए हैं। उन्हें सरदारों के पुत्रों के समान रहना चाहिए। उनसे घुलना-मिलना चाहिए।'' जीजामाता ने दादोजी पंत से कड़े स्वर में प्रश्न किया, ''क्या कहते हैं आप? क्या शिवबा सरदार के बच्चों की तरह दरबार के कपड़े पहनकर पातशाह की सलामी करेंगें? क्या वे प्रजा को लूटनेवालों का समर्थन करेंगे? नहीं! अब यह नहीं होगा।'' बीजापुर दरबार का वैभव दिखाकर जीजामाता ने शिवबा से कहा, 'यह सारा वैभव, धन-सम्पत्ति हमारे अपनों का रक्त बहाकर जमा की गई है। उनकी अमीरी, उनकी सत्ता बढ़ाने के लिये, मजबूत करने के लिये हम अपने ही बान्धवों से लड़ते हैं। उन्हें मारते हैं। शिवबा, यह हमारी भूमि है। हमारा राज्य होना चाहिए। हम क्यों सत्ताधीशों के आगे भूमि के टुकड़े के लिए लाचार होते हैं?'' शिवबा ने उत्साह के साथ युद्ध करके गढ़-किलों को जीतने का निश्चय किया। तब जीजामाता ने कहा, 'शिवबा धैर्यपूर्वक योजनाबद्ध ढंग से आगे बढ़ना होगा। पैसा, फौज, युद्ध-सामग्री जमा करनी होगी। भील, वनवासी (आदिवासी), लोहार, सोनार, किसानों, मजदूरों से सैनिक-निर्माण करने हैं तथा विदेशी सत्ताधारियों के प्रतिकार के लिये तैयार रहना होगा। अन्यथा सबका मनोबल टूट जाएगा। शिवबा, स्मरण रखो कि प्रत्येक कार्य में ईश्वर का अधिष्ठान होना आवश्यक है।''

जीजामाता स्वतन्त्र न्याय राज्य की स्थापना के लिये कटिबद्ध थीं। उनकी दूरदृष्टि थी। उनका राजनीति का गहन चिन्तन था। कार्य के परिणाम का वह विचार करती थीं। शिवबा के प्रथम विजय के बाद जख्मी मावलों के औषधि की व्यवस्था स्वयं जीजामाता ने की।

आदिलशाह ने शिवाजी राजा की पत्नी सईबाई के भाई बजाजी राव को जबरन मुसलमान बनाया। तब दृढ़ जीजाबाई ने रूढ़िवादियों को कहा, ''आपको परिस्थिति के अनुसार नियम के शास्त्र बदलने होंगे। बजाजी का शुद्धिकरण कर उन्हें हिन्दू धर्म में लाना ही होगा।''

जीजामाता ने स्वराज्य का विरोध करनेवाले सगे-सम्बन्धियों को पहले सामोपचार से और न मानने पर युद्ध करके जीतने की सलाह शिवबा को दी थी।

कोंढणा, पुरन्दर आदि किले शिवाजी राजा ने जीत लिए। अनेक मावले (सैनिक) लड़ाई में मारे गए। तब जीजामाता ने शिवबा से कहा, ''आप सैनिकों के घर जाकर उनके परिवारों को सान्त्वना दीजिए। उनके परिवार के लिये उदर-निर्वाह की व्यवस्था कीजिये। उनके घर के पुरुषों को सेना में भर्ती कीजिए। इससे प्रजा में विश्वास-निर्माण होगा। आपके प्रेम पूर्ण व्यवहार से उन्हें स्वराज्य का कार्य अपना लगेगा।''

मराठा वीरों का पराक्रम प्रशंसनीय था। उनके विश्वास और शौर्य के कारण शिवाजी महाराज ने अफजल खान का वध किया। मातोश्री जीजाबाई ने सबका सम्मान किया। किन्तु किसी को भूमि ईनाम में नहीं दिये। जीजामाता की इस कुशल व्यवस्था के कारण शिवाजी राजा को सबका साथ मिला। अन्यथा सब अपनी-अपनी भूमि लेकर फिर अपने में मग्न हो जाते। जीजामाता ने प्रजा का स्वाभिमान-विश्वास वृद्धि करने के लिए शाहिरों को अफजल खान-वध का 'पोवाड़ा' (शौर्यगाथा) लिखने के लिए प्रेरित किया। इस प्रकार वह हमेशा प्रजा का उत्साहवर्धन करती रहती थीं। जीजामाता अपने प्रजाजनों के घरों का ध्यान रखती थीं और शिवाजी राजे ईमानदार लोगों को अपना बनाते थे, मनुष्य-निर्माण करते थे।

जब शिवाजी राजे औरंगजेब के यहाँ बन्दी बना लिये गये थे, तब जीजाबाई ने कुशल प्रशासक की तरह सारा दायित्व सम्भाला। सारे किलों पर सतर्कता रखी। सेनापति की मदद से स्वराज्य की सीमा का रक्षण किया। तुर्कों को स्वराज्य में घुसने नहीं दिया। जरूरत पड़ने पर बाहर से हमला करने के लिये स्वयं सेना के साथ तैयार थीं। राज्य की कर व्यवस्था की भी वह यथोयोग्य निगरानी करती थीं।

वह दोनों पक्षों को सुनकर योग्य न्याय देती थीं। वे कभी भी प्रजा का चूल्हा बन्द नहीं होने देती थीं। उनके घर के कार्यों के लिये आवश्यकता पड़ने पर स्वयं पैसे भेजती थीं। उनके मातृवत् प्रजा-पालन से स्वराज्य के प्रशासन में सुदृढ़ व्यवस्था निर्मित हुई। प्रजा जीजामाता को अपनी माता और शिवबा को अपना राजा मानते थे।

६ जून, १६७४ को शिवाजी राजा का राज्याभिषेक हुआ। जीजामाता का स्वतन्त्र हिन्दू राज का स्वप्न पूर्ण हुआ। निरन्तर प्रजाहित में दक्ष जीजामाता की आँखें भर आईं। अपने कार्य की समाप्ति के साथ उनकी जीवनाभिलाषा भी समाप्त हुई। १७ जून, १६७४ को मध्यरात्रि में जीजामाता परमेश्वर के चरणों में विलीन हो गईं।

जीजामाता के संस्कारों से ही शिवाजी भोग-विलास में मग्न नहीं रहे, सुख-वैभव में लिप्त नहीं रहे, सदैव राज्य और प्रजाहित के कल्याण में संलग्न रहे। प्रजाहित में दक्ष, अनुशासनप्रिय, न्यायप्रिय, दूरद्रष्टा, कठोर परिश्रमी जीजामाता के कारण स्वराज्य का निर्माण हुआ। जीजामाता का जीवन-चरित्र हम सबकी प्रेरणा का स्रोत है। उनकी जीवनी हमें अपने संकुचित विचारों से बाहर निकलकर राष्ट्रहित के लिए कार्य करने की प्रेरणा देती है। जीजामाता के जीवन से प्रेरणा लेकर सभी मातायें अपनी सन्तानों में राष्ट्रभक्ति का सुसंस्कार देकर उन्हें शिवाजी जैसी प्रतापी सन्तान की माता होने का गौरव प्राप्त कर सकती हैं। इस प्रेरक मातृशक्ति को शतशः नमन। ○○○

प्रेरक लघुकथा

कभी न करो ऐसा काम, पछताना हो जिसका परिणाम

डॉ. शरद चन्द्र पेंढारकर

महाराष्ट्र के देह-नगर में सालोमालो नामक एक व्यक्ति था। साधु-सन्तों का गौरव होते देख उसे इच्छा हुई कि लोग उसका भी गुणगान करें। उसने साधु जैसा भेष बनाया और कुछ ढोंगी शिष्य बना लिये। वह सन्त तुकाराम द्वारा रचित अभंगों को कण्ठस्थ कर उनमें तुकाम्हणे के स्थान पर 'सालोम्हणे' कहकर लोगों को सुनाने लगा। ऐसे ही अभंगों – मराठी भजनों की एक बही बना ली और उन्हें स्वरचित बताकर लोगों को उसे दिखाने लगा। सन्त तुकाराम को जब यह बात पता चली, तो उन्होंने नये अभंग रचकर, सालोमालो की भर्त्सना करना शुरू किया। इस प्रकार के एक अभंग की चार पक्तियाँ देखिये –

सालोमालो हरिचे दास। म्हणबूनि केला अवधा नाश।
अवधे बचमंगल केले। म्हणती एकेक आपुले।
मोड़नी संताजी बचने। कारेती आपण भूषानें।
तुकाम्हणे कवी। जगामधी रूढ़दावी॥१॥

(सालोमालो स्वयं को 'हरि का दास' बताकर साधु होने का ढोंग रच रहा है। मेरे हर अभंग में अपना नाम डालकर दूध में जहर घोलने जैसा काम कर रहा है। तुकाराम का इस सम्बन्ध में मत है कि ऐसे ढोंगी कवियों का जग में रहना कलंक है।)

उनका एक दूसरा पूरा अभंग इस प्रकार है –

विकाल तेथे विका। माती नाव ठेबूनि बिका।
हा तो निवाउयाचा ठाव। खरा खोटा निवड़े भाव।
धर्माचे पालन। करणे पाखंड खंडन।
गाढवी दुधाल झाली जरी। गाई जी सर येत नाहीं॥
बेडूक फुगला जरी। बैला एवढा होत नाहीं।
चिरकुटे बांधून पोट वाढाबिले। तरी गर्भारपण होत नाहीं।
गाढ़वाने किती हो शृंगार केला। तरी तो घोडा होत नाहीं।

इसका सार इस प्रकार है – बाजार में जो भी चीज बेची जाए, खप जाती है। मिट्टी को अबीर बताकर बेचा जा सकता है। इसलिए खरीदनेवाले को असली और नकली वस्तु को देखना चाहिए। लोग पाखण्ड का आचरण करके उसे धर्माचरण बताते हैं। तथापि गधी के गाभन होने से वह गाय नहीं बनती। मेंढक अपने को कितना भी फुलाये वह बैल नहीं कहलाएगा। पेट पर वस्त्रों को बाँध लेने से कोई स्त्री गर्भवती नहीं हो सकती और गधे द्वारा शृंगार करने पर उसे कोई 'घोड़ा' नहीं कहेगा। इस प्रकार पाखण्डी लोग नकल करके सन्त कवि नहीं हो सकते।

लोगों को जब यह बात मालूम हुई, तो सालोमालो की सर्वत्र निन्दा होने लगी। उसे बाहर निकलना कठिन हो गया। लेकिन कितने दिन छिपा रहता। उसके साथियों ने लोगों को उसका पता बता दिया। लोगों ने उसको पीटा और बहियाँ जला दीं। उसने लोगों से क्षमा माँगी और नगर छोड़कर दूसरे स्थान पर चला गया। ○○○

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (३७)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लंघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

नवद्वीप में

बाद में, घाट पर उतरकर मैंने सामने ही स्थित गौर-गोपाल के अखाड़े में आसन जमाया। गौरगोपाल की मूर्ति काफी बड़ी – 'लड्डूगोपाल' के समान है। सेवायत-पुजारी के आसन पर एक व्रजवासी है, काफी काल से बंगाल में रहते-रहते वह काफी-कुछ बंगालियों-जैसा ही हो गया है। उसने मुझे बड़े यत्नपूर्वक रखा। मैं एक निर्जन स्थान में जाकर गंगास्नान करता। इसके बाद नवद्वीप में जाकर किसी मन्दिर में प्रसाद ग्रहण करता और गौरगोपाल के अखाड़े में आकर मन्दिर-प्रदक्षिणा के खुले-हुए बरामदे में चटाई बिछाकर रात गुजारता। गौरगोपाल के सेवायत-पुजारी के साथ मैं केवल हिन्दी में ही बातचीत किया करता था। उसके पास से एक 'गीत-गोविन्द' लेकर अवकाश के समय मैं उसका सस्वर पाठ करता।

स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज

जिस दिन मैं नवद्वीप पहुँचा, उसी दिन अपराह्न में, मैं वहाँ का सबसे बड़ा 'पक्का टोल' (संस्कृत विद्यालय) देखने गया। उस टोल में तब भी उत्तर-पश्चिमी भारत के संन्यासी छात्र न्याय-शास्त्र पढ़ा करते थे। मैंने विद्यालय के अध्यक्ष पण्डित राजकृष्ण तर्कपंचानन महाशय के साथ काफी देर तक बातें की। उन्होंने श्वेताश्वतर उपनिषद की दुहाई देते हुए द्वैतवाद के पक्ष में बहुत-सी बातें कहीं। मैंने भी अद्वैतवाद के पक्ष में बहुत-कुछ कहा।

बाद में, हम दोनों एक साथ निकलकर नवद्वीप के विख्यात स्मृति-पण्डित व्रज-विद्यारत्न महाशय के घर के पास गये। उस मकान के मुख्य द्वार से ही भीतर मन्दिर में स्थापित मनुष्य के आकार की निताई तथा चैतन्य महाप्रभु की अति सुन्दर मूर्ति देखने में आयी। मैंने द्वार से ही प्रणाम किया। इस पर तर्कपंचानन महाशय विस्मयपूर्वक बोल उठे, "आप परमहंस संन्यासी हैं। आपने उन्हें इस प्रकार भक्तिपूर्वक प्रणाम किया, यह आपको शोभा नहीं देता।" उनकी यह बात सुनकर मैं भौचक्का हो गया। मैंने उनसे पूछा, "क्यों महाशय? क्या आप लोग महाप्रभु को अवतार नहीं मानते?"

वे बोले, "नहीं, हम लोग उन्हें एक बड़े भक्त के रूप में ही जानते हैं।" मुझे इस बात का जरा भी आभास नहीं था कि नवद्वीप के पण्डित लोग अब भी महाप्रभु को अवतार नहीं मानते।

इस घटना के परवर्ती दिन मैं भिक्षा के लिये व्रज-विद्यारत्न महाशय के मकान में गया। अन्दर जाकर मैंने देखा – सामने दालान में निताई तथा चैतन्यदेव की पूर्ण आकार की दिव्य मूर्ति विद्यमान है और उस मूर्ति के दोनों ओर दीवारों पर एक ओर कैलास तथा दूसरी ओर वैकुण्ठधाम के सुन्दर चित्र बने हुए हैं। उसी मन्दिर की एक ओर व्रज-विद्यारत्न महाशय की भी एक सुन्दर मूर्ति थी। देखने में वह जीवन्त ही प्रतीत हो रही थी। उसमें कृष्णनगर में स्थित घुर्णी के कारीगरों की कुशलता का विशेष परिचय देखने को मिलता है। उस मन्दिर में विधिपूर्वक नित्य-पूजा तथा भोग-आरती की व्यवस्था थी। मैंने भी वहाँ एक दिन प्रसाद पाया।

नवद्वीप के मध्य में 'पोड़ामा-तला' है और उसके चारों ओर लोगों का निवास है। वहाँ एक विशाल वटवृक्ष के नीचे वृत्ताकार पक्का चबूतरा बना हुआ है।

वहाँ के सारे ब्राह्मण पण्डित, अपना सन्ध्या-वन्दन करने के बाद, शाम के समय वहीं एकत्र होकर खूब वाद-विवाद करते हैं। एक दिन मैं उसी 'पोड़ामा-तला' पर जाकर थोड़ी देर बैठा था कि कुछ पण्डित आये और मुझे घेरकर बैठ गये। उनमें से एक ने मुझसे पूछा, "शूद्र होकर भी क्या ब्राह्मण को अपनी चरणधूलि दी जा सकती है? यहाँ पर

एक ज्ञानानन्द अवधूत हैं। वे ऐसा ही करते हैं।'' मुझे ज्ञात था कि ज्ञानानन्द अवधूत (नित्यगोपाल) इन दिनों यहीं हैं। उत्तर में मैंने कहा, ''राम-कृष्ण आदि अवतार ब्राह्मण नहीं थे, तो भी वे कैसे सहस्रों ऋषि-मुनि तथा ब्राह्मणों के इष्टदेवता के रूप में पूजित हुए?''

यह सुनते ही ब्राह्मण-पण्डित बोल उठे, ''अरे, ओ न्यायचंचु, तर्करत्न, विद्यावागीश लोग, सभी यहाँ चले आओ; और भी एक जन मिल गये हैं, ये भी उसी दल के या जगबन्धु के दल के हैं ।'' यह कहते हुए उन लोगों ने तरह-तरह के व्यंग्य, कटाक्ष आदि करते हुए मुझे चारों ओर से घेर लिया। मैंने विनयपूर्वक उन लोगों से बारम्बार शास्त्रसम्मत तर्क-विचार करने को कहा, परन्तु वे लोग मेरे अनुरोध को अनसुना कर दिया और मेरे ऊपर असंख्य वाक्यबाणों की वर्षा करने लगे। मैंने 'त्राहि-त्राहि' करते हुए उस स्थान का परित्याग किया और गौरगोपाल के चरणों में पहुँचकर चैन की साँस ली। उस एक दिन की चर्चा से ही मुझे नवद्वीप के एक विशेष श्रेणी के ब्राह्मण-पण्डितों की विद्या तथा आचरण का जो परिचय मिला, उससे मुझे अत्यन्त खेद हुआ था।

बहुत दिनों से मुझे किसी परम वैष्णव का दर्शन करने की इच्छा हो रही थी। परन्तु वैसे भक्त नवद्वीप में प्रच्छन्न भाव से रहते हैं, अत: मुझे उन लोगों का दर्शन नहीं मिल सका।

मेरे नवद्वीप-निवास के चार-पाँच दिनों बाद एक दिन अपराह्न में नवद्वीप हाईस्कूल के हेड-मास्टर और वहाँ की नगरपालिका के उपाध्यक्ष श्रीयुत वीरेश्वर भट्टाचार्य, श्रीयुत विनोदलाल गोस्वामी तथा अन्य दो-चार शिक्षकों ने मुझे देखा और बोल उठे, ''महाशय, पिछले दो-तीन दिनों से हम लोग आपकी इधर-उधर तलाश कर रहे हैं, परन्तु आज जाकर आप पकड़ में आये हैं।'' विश्वेश्वर बाबू मुझसे रात के समय अपने घर भिक्षा ग्रहण करने को कह गये। उनके चले जाने के बाद, मैंने सुना कि उन लोगों को गौरगोपाल के पुजारी के मुख से मेरे विषय में जानकारी मिली थी।

रात को मास्टर बाबू के घर पहुँचकर मैंने देखा कि उनके बैठकखाने में अनेक शिक्षित सज्जन बैठकर मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। एक चीज की ओर मेरा ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। देखा, मास्टर बाबू के बैठकखाने की दीवार पर 'शिकागो-व्याख्यान की वेशभूषा वाला' स्वामीजी का एक सुन्दर चित्र लटक रहा है। उसके नीचे एक छोटी-सी मेज पर 'शिकागो-व्याख्यान' तथा कुछ अन्य पुस्तकें पड़ी हैं। यह देखकर मुझे बड़ा ही आनन्द हुआ। गुरु का परिचय पूछने पर मैं किसी को कुछ बताता नहीं था, क्योंकि ''गूँगे का कोई शत्रु नहीं होता।'' इसके बाद, रात के बारह बजे तक 'वर्तमान धर्म तथा देश की परिस्थिति' विषय पर चर्चा होती रही। कई लोगों के प्रश्नों के उत्तर भी दिये गये। बाद में भोजन-आदि करने के बाद मैंने विश्वेश्वर बाबू को बता दिया कि उनके साथ मेरी फिर भेंट नहीं हो सकेगी, क्योंकि मैं भोर में ही उठकर चला जाऊँगा।

अगले दिन मैं खूब भोर में उठा और निर्जन में ही गंगास्नान करके गौरगोपाल के अखाड़े में चला गया। वहीं प्रसाद भी पाया। बात-बात में उसी पुजारी ने मुझसे पूछा, ''आप क्या स्वामी विवेकानन्द हैं, छद्मवेश में आये हैं?'' मैं बोला, ''यह कैसी बात? किसने तुम्हें ऐसा कहा?'' पुजारी ने कहा, ''कल मास्टर बाबू के घर पर आपने जो सारी बातें कही हैं, उसी से उन्हें विश्वास हो गया है कि आप स्वामी विवेकानन्द ही हैं।'' मास्टर बाबू को अपने विषय में सारी बातें सूचित करने को मैं बड़ा ही आतुर हो उठा।

अपराह्न के समय विनोदलाल गोसाईं के कपड़े की दुकान में जाते ही वे तत्काल मुझे मास्टर बाबू के घर ले गये। मैंने विश्वेश्वर बाबू आदि से कहा, ''मैं विवेकानन्द हूँ, ऐसी धारणा आप लोगों को क्यों हुई?'' वे बोले, ''आपने अपना परिचय क्यों नहीं दिया? फिर आपने जितनी भी बातें कहीं, वे सभी स्वामीजी की उक्तियों के ही समान थीं। स्वामीजी की जितनी भी पुस्तकें निकली हैं, हमने उन सभी को पढ़ा है। द्वितीयत: उनके चेहरे के साथ आपके चेहरे का सादृश्य है। इन्हीं सब कारणों से हमारे मन में वैसी धारणा हुई थी।''

तब मैंने उन लोगों को बताया कि मैं उनका गुरुभाई हूँ, अत: उनकी बातों के साथ मेरी बातों का मेल होना स्वाभाविक है और जहाँ तक चेहरे की समानता की बात है, यह उनके साथ भ्रमण करने के पूर्व भी अनेक लोगों ने कहा था। मैंने उन लोगों को यह भी बताया कि चिकित्सकों के परामर्श के अनुसार स्वामीजी इस समय दार्जिलिंग गये हुए हैं ।

इस पर उन लोगों ने मेरे साथ सच्चर्चा करने के निमित्त मुझे अपने पास के ही एक अच्छे मकान में रखने की इच्छा व्यक्त की, परन्तु मैं अगले दिन सबेरे ही गंगापार होकर कुँदघाटा चला गया। **(क्रमश:)**

माया मिली न राम

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

आध्यात्मिक जीवन का प्राण है साधना में निष्ठा और नियमितता। आध्यात्मिक जीवन का नियम है कि जो कुछ हमें मिला है, उसमें सन्तुष्ट रहें। हम अपने जीवन के प्रत्येक कार्य को भगवान की सेवा से जोड़कर रखें। शर्त यह है कि हम संसार चाहते हैं या भगवान? पवित्रता और निष्ठा, नियमितता साधना में रहनी चाहिए। केवल एकमात्र त्याग से ही सब कुछ हो जायेगा। संसार का हर काम भगवान की सेवा है। हमको संसार सर्वत्र नहीं लगना चाहिए। भगवान ही सर्वत्र लगना चाहिए। भगवान के प्रीत्यर्थ ही हम सब काम कर रहे हैं, ऐसा लगना चाहिए। इसलिये हमें 'मैं' को छोड़ना है और भगवान को सर्वत्र जोड़ना है।

यदि हमारे जीवन में पैसे का महत्त्व आयेगा, तो भगवान छूट जायेंगे। इसलिये अपने जीवन में ईश्वर को स्थान दें। सबसे महत्त्वपूर्ण भगवान ही होने चाहिए। यदि ऐसी भावना हो जायेगी, तो भवसागर से पार हो जायेंगे। हम अपने संसार में सन्तुष्ट नहीं हैं, तो दुखी होंगे। अगर सब परिस्थिति में समाधान रखेंगे, तो सुखी होंगे। जहाँ प्रभु ने रखा है वहाँ आनन्द से रहो। जो भी कठिनाई हो भगवान को बताना है, भगवान से बातचीत करना है। केवल भगवान ही हमें मृत्यु-दुख से रक्षा कर सकते हैं। हम संसार में सब कुछ व्यवस्था कर दें, लेकिन वह सब मृत्यु से हमें बचा नहीं सकता। जीवन में ऐसा काम करें कि हमें मृत्यु के समय पछताना न पड़े। जानबूझकर ऐसा काम न करें कि किसी को कष्ट हो। वह धन्य है कि जो दूसरों की सेवा कर आनन्द में रहता है। ईश्वर की सेवा मनुष्य में की जा सकती है। यह नर-रूप में नारायण की सेवा है। हर क्षेत्र में हमें अपने को धर्म से, भगवान से जोड़ना है।

जीवन में आध्यात्मिक विकास कैसे होता है? आध्यात्मिक विकास में चित्त बहुत महत्त्वपूर्ण है। चित्त क्या है? यह वस्तु है, जो दिखती नहीं है, लेकिन भीतर से बहुत आवाज लगाती है, उसको ही चित्त कहते हैं। हमारे चित्त में ही सब संस्कार रहते हैं। चित्त को शुद्ध करने के लिये भगवान का स्मरण-मनन करना चाहिए। हमें धीरे-धीरे यह भी आदत लगानी चाहिए कि हम जो भी खायें, पीयें, उसे पहले भगवान को अर्पण करें। हमें आध्यात्मिक साधना के लिये अपने काम-धंधे की सुव्यवस्था कर थोड़ा समय निकालना चाहिए, जिससे हम भगवान का नाम अच्छी तरह से ले सकें। जो परिस्थिति अपने हाथ के बाहर है, उसको सुधारने का प्रयास न करें। अनुकूल परिस्थितियों के चक्कर में पड़ेंगे, तो कुछ नहीं होने वाला है। मन की अनुकूलता और प्रतिकूलता हमारे हाथ में हैं। परिस्थितियाँ बाहर की हैं, हमारे हाथ में नहीं है। अनुकूलता-प्रतिकूलता मन में ही होती है, बाहर में नहीं। हमारा मन भगवान में अनुकूल हो, तो सब कुछ अनुकूल लगता है। कर्तव्य का पालन करें और प्रतिकूलता को सहन करने का अभ्यास करें। प्रतिकूलता में भी मन को भगवान के भजन में लगाएँ, तभी भगवान का भजन होगा। नहीं तो, 'आये थे हरी भजन को, ओटन लगे कपास', जैसा हो जायेगा। न घर के, न घाट के। 'माया मिली न राम', कहावत चरितार्थ हो जायेगी। इससे बड़ा दुर्भाग्य मानव जीवन का और कुछ नहीं होगा।

इसलिए हमें भगवान से जुड़ना चाहिए। हमें परमार्थ के लिये प्रयास करना चाहिए। परमार्थ याने भगवान का भजन और नाम-जप, सत्संग। सत्संग का अर्थ है भगवान का नाम जप और उनकी चर्चा करना। यह भी ध्यान रहे कि भगवान केवल हमारे जप-ध्यान से नहीं मिलते। वे मिलते हैं, केवल उनकी कृपा से।

अनुकूलता-प्रतिकूलता अपने मन से है। हमें भजन में अनुकूलता देखनी चाहिए। प्रत्येक प्रतिकूलता में भगवान के भजन की अनुकूलता है, उसे ढूँढ़ना चाहिए। हरि-चर्चा में रुचि लानी चाहिए। जीवनभर अपने मन को साधना के अनुकूल बनाना पड़ेगा। ○○○

मेरी बात पर विश्वास कीजिए। दूसरे देशों में धर्म की केवल चर्चा ही होती है, पर ऐसे धार्मिक पुरुष, जिन्होंने धर्म को अपने जीवन में परिणत किया है, जो स्वयं साधक हैं, केवल भारत में ही है।

— स्वामी विवेकानन्द

आध्यात्मिक जिज्ञासा (६१)

स्वामी भूतेशानन्द

(३७)

प्रश्न – महाराज ! शास्त्र में है – 'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति।' केवल ब्रह्मविद् ही क्यों? वेदान्त की दृष्टि से तो सभी ब्रह्म हैं।

महाराज – हाँ, सभी ब्रह्म हैं, किन्तु सभी उपाधियुक्त ब्रह्म हैं। ब्रह्म को जानकर निरुपाधि होते हैं। 'एव' शब्द के द्वारा यही जोर दिया जा रहा है। 'ब्रह्म एव भवति' – ब्रह्म ही होता है। अर्थात् निरुपाधिक ब्रह्म होता है।

प्रश्न – महाराज ! शंकराचार्यजी ने प्रस्थानत्रय में जिस प्रकार अद्वैत तत्त्व की प्रतिष्ठा की है, क्या वहाँ शक्ति का स्थान है?

महाराज – है। उन्होंने शक्ति को स्वीकार किया है। किन्तु ब्रह्म की दृष्टि से ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

– अर्थात् शक्ति और शक्तिमान अभेद हैं, इस दृष्टि से क्या?

महाराज – ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, इस दृष्टि से।

– क्यों महाराज ! शंकराचार्यजी का सौन्दर्यलहरी स्तोत्र है?

महाराज – इन्हें शंकराचार्यजी की रचना में नहीं लेते ।

– महाराज ! शंकराचार्यजी ने भाष्य में शक्ति को स्वीकार किया है या उनकी जीवनी में यह सब मिलता है।

महाराज – हाँ, भाष्य में भी मिलता है। उन्होंने ईश्वर को स्वीकार किया है। ईश्वर को स्वीकार करना अर्थात् शक्ति को स्वीकार करना है। उनके द्वारा रचित स्तोत्र और स्तुतियों में तो उन्होंने स्वीकार किया ही है। जैसे वे कह रहे हैं –

सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरंगः क्वचन समुद्रो न तारंङ्गः।।

(विष्णुषट्पदी)

(अर्थात् भेद अपगम होने पर भी मैं तुम्हारा हूँ, तुम मेरे नहीं अर्थात् मैं तुम्हारा अंश हूँ, तुम हमारे अंश नहीं हो। क्योंकि समुद्र का अंश ही तरंग है, तरंगाकार अंश कभी समुद्र नहीं होता है।)

किन्तु, उसमें ब्रह्म के अतिरिक्त कोई सत्ता नहीं है।

– स्वामीजी के 'शिव-भाव से जीव-सेवा' में यही भावना है कि शिव के अतिरिक्त कोई भिन्न सत्ता जीव की नहीं है, यही तो?

महाराज – किन्तु स्वामीजी ने यह भी कहा है कि यदि दोनों ही शिव हों, तो कौन किनकी सेवा करेंगे? सेव्य-सेवक भाव रहता है क्या?

– महाराज, वह तो तत्त्व समझने पर होगा। किन्तु जब तक तत्त्व की उपलब्धि नहीं हो रही है, तब तक तो उसी अवस्था की प्राप्ति के लिए साधना है।

महाराज – हाँ, ठीक कह रहे हो। दो बातें हैं। तत्त्व में प्रतिष्ठित हो जाने पर जीव में सेव्य-सेवक का भाव नहीं रह जाता। साधना के समय जीव-शिव, सेव्य-सेवक का भाव रहता है। उस समय तत्त्व-बोध नहीं रहता है। इसीलिये साधना-काल में द्वैत-भाव रहता है। बहुत रहता है। उस समय सबकी आवश्यकता होती है। तत्त्व में पहुँच जाने पर फिर ये सब नहीं रहता है। तब तत्त्व जो है वही है। तभी तो कहा है –

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्नवै मुक्त इत्येषा परमार्थता।।

(माण्डुक्य कारिका, २/३२)

ठाकुर पंजाबी वेदान्त पसन्द नहीं करते थे।

– महाराज, पंजाबी वेदान्त क्या है?

महाराज – एक वेदान्ती के नाम से निन्दा सुनकर ठाकुर ने उससे पूछा – क्यों जी! तुम तो वेदान्ती हो! फिर तुम्हारे नाम से ये सब क्या सुन रहा हूँ? उस वेदान्ती ने उत्तर दिया – हाँ, महाराज। यह जगत तो तीन काल में मिथ्या है और आप जो ये सब सुन रहे हैं, यह भी मिथ्या है। ठाकुर उसकी बाद सुनकर बहुत रुष्ट हो गये थे और उन्होंने क्या कहा था, उसे तो तुम सभी जानते हो। (सभी हँसते हैं) वास्तविक बात है कि वेदान्त-चर्चा हमलोग क्यों करते हैं? वेदान्त-चर्चा अज्ञान दूर करने के लिये करते हैं। यदि वह अज्ञान रह ही जाय, तो समझना होगा कि वेदान्त-चर्चा से कोई लाभ नहीं हो रहा है।

– यदि कोई अपने सिद्धान्त से अविचलित न रहे,

कुछ दिन बाद उसका व्यवहार सिद्धान्त के विपरीत देखा जाता है, तो क्या इससे यह सिद्ध होता है कि वह तत्त्व में प्रतिष्ठित नहीं है?

महाराज – तत्त्व में प्रतिष्ठित होने पर अविचलित होने की बात है। तत्त्व में प्रतिष्ठित होकर क्या वह ऐसा कह रहा है? यही प्रश्न है। जो एक बार तत्त्व में प्रतिष्ठित हो गया है, वह व्यक्ति वह सब करने क्यों जायेगा? उधर वह जायेगा ही नहीं।

– महाराज ! ब्रह्म और शक्ति अभेद है, क्या यह तन्त्र का मत है?

महाराज – हाँ।

प्रश्न – महाराज ! उस दिन आपने कहा था कि दयानन्दजी ने आपको बचाया था, नहीं तो आप साधु नहीं हो पाते। इस घटना को थोड़ा कहिये।

महाराज – यह घटना ऋषिकेश की है। मैं तब साधु नहीं हुआ था, साधु बनूँगा, इसलिये भागकर ऋषिकेश चला गया था। श्वेत वस्त्र पहनता था। उस समय दयानन्दजी वहीं पर थे। उनसे बातचीत हुई। उनसे मैंने अपने मन की बात कही। उन्होंने कहा – ''अभी तुम वापस चले जाओ। परीक्षा पूर्ण करो। उसके बाद रामकृष्ण मिशन में सम्मिलित हो जाओ। नहीं तो तुम्हारा जीवन नष्ट हो जायेगा। यहाँ इस प्रकार भ्रमण करके अच्छा साधु नहीं हुआ जाता।'' उनकी बातें सुनकर मैंने बहुत सोचा। मुझे ये बातें कहने से उनका क्या लाभ है? अवश्य ही मेरे कल्याण के लिये ही ये सब बातें कह रहे हैं। इसके पहले रामकृष्ण मिशन और साधुओं के साथ मेरा मिलना-जुलना और परिचय नहीं था। किन्तु रामकृष्ण मिशन में सम्मिलित होऊँगा, ऐसा कुछ निर्णय नहीं लिया था। साधु बनूँगा, यह इच्छा बचपन से ही थी। ऋषिकेश जाकर सोचा – यही तो, ये लोग भी साधु हैं, मैं भी साधु हूँ। यहीं साधु बनकर रह जाऊँगा। किन्तु वैसा नहीं हुआ। दयानन्दजी की बात पर बहुत विचार किया। लगा कि वे ठीक ही कह रहे हैं। निर्णय लिया कि वापस चला जाऊँगा। किन्तु मेरे पास रुपये नहीं थे। उन लोगों के पास भी कुछ नहीं था। अत: दयानन्दजी ने कहा – ''मेरे पास रूपये-पैसे नहीं हैं। तुम कुछ सोचो मत, ऐसे ही चले जाओ।'' उन्होंने मेरे साथ बहुत-सी रोटियाँ दे दीं। उन रोटियों को बाँधकर मैं प्रस्थान किया। स्टेशन पर आकर देखा, भगवान का डिब्बा (रेलगाड़ी) खड़ा था ! (सभी हँसते हैं)। मैं रेलगाड़ी में चढ़ गया। कुछ दूर आने के बाद टी. टी. ने टिकट माँगा। मैंने उनसे कहा – ''मेरे पास न टिकट है, न टिकट कटाने के योग्य पैसा है।'' वह मुँह टेंढ़ाकर चला गया। कुछ नहीं कहा। (सभी हँसते हैं।) उस समय आजकल जैसी इतनी द्रुतगामी रेलगाड़ी नहीं थी। रेलगाड़ी में ही बहुत समय लग जाता था। बीच-बीच में भूख लगने पर रोटियों को निकालकर पानी में भिगोकर थोड़ा-थोड़ा खाता था। रेलगाड़ी एक स्टेशन पर आकर रुकी। देखा, वहाँ झोपड़ी जैसा एक होटल था। मेरे पास बिलकुल पैसा नहीं था, ऐसी बात नहीं थी। सोचा, चार आने देकर दाल-भात खाता हूँ। बहुत भूख भी लगी थी। वही किया। चार आना देकर भरपेट भोजन किया। क्या अमृत जैसा स्वाद लग रहा था! वह स्वाद बहुत दिनों तक स्मरण रहा। जो भी हो, पुन: रेलगाड़ी में बैठा। बहुत देर चलने के बाद पुन: रेलगाड़ी किसी स्टेशन पर आकर बहुत देर तक रुकी रही। मैं भी प्लेटफार्म पर उतरकर घूम रहा था। देख रहा हूँ कि चारों ओर बहुत से टी.टी. हैं। क्या करूँ! रेलगाड़ी में चढ़ने में बहुत डर लग रहा था। पुन: सोच रहा हूँ कि रेलगाड़ी छोड़ देने के बाद मैं जाऊँगा कैसे? कहाँ रहूँगा? साहस करके गार्ड को पास में देखकर कहा – ''मेरे पास टिकट खरीदने के लिये पैसा नहीं है। किन्तु मेरा जाना आवश्यक है। मैं क्या करूँ?'' वह अँग्रेज साहेब था। तब स्वदेशी युग था। सम्भवत: भारत छोड़ो आन्दोलन के समय। उसने रुष्ट होकर कहा – ''तुम अपने देशवासियों से भिक्षा माँगो, वे लोग अवश्य तुम्हारी सहायता करेंगे।''

जो भी हो, रेलगाड़ी छूटने का समय हो गया देखकर एक टी.टी ने मुझे रेलगाड़ी में बैठने का संकेत किया। मैं बैठ गया। देखते-देखते वर्धमान के पास चला आया। पुन: टी.टी. ने टिकट माँगी। मैंने स्पष्ट कहा – टिकट नहीं है। उसने पूछा – कहाँ से आ रहे हो? मैंने कहा – ऋषिकेश से। रुष्ट मुख-मुद्रा में मुझे छोड़कर वह आगे बढ़ गया। भाव यह था कि ऋषिकेश से जो बिना टिकट के इतनी दूर चला आया है, उससे टिकट माँगने का अब क्या अर्थ है! (सभी हँसते हैं।) तब मुझे स्मरण हुआ, मेरे पास कुछ पैसा तो है, पूरा मार्ग बिना टिकट के आना ठीक नहीं है। रेल को धोखा देना ठीक नहीं हो रहा है। यही सोचकर वर्धमान से एक टिकट लिया। (सभी हँसते हैं।) जो भी हो, मठ में आ तो गया। सबसे मिला। पूज्य महापुरुष महाराज ने मुझे मठ में लेना नहीं चाहा। उन्होंने कहा – ''पहले पढ़ाई पूर्ण करो।'' तब मैं और क्या करता ! वापस चला गया। **(क्रमश:)**

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के विभिन्न केन्द्रों में दुर्गापूजोत्सव का आयोजन हुआ

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ, हावड़ा में दुर्गापूजा का आयोजन किया गया। २१ अक्तबूर, २०२० को बोधन, कल्पारम्भ २२ अक्तूबर को, २४, को महाष्टमी पूजा, सन्धिपूजा, कुमारी पूजा हुई। पूजा में प्रतिदिन रामकृष्ण संघ के महाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी स्मरणानन्द जी महाराज, उपाध्यक्ष स्वामी प्रभानन्द जी महाराज, स्वामी सुहितानन्द जी महाराज, महासचिव स्वामी सुवीरानन्द जी महाराज और अन्य संन्यासी-ब्रह्मचारी उपस्थित रहे। संन्यासी-ब्रह्मचारियों ने बैठकर काली-कीर्तन-भजन, जप-ध्यान किये। २६ को विजयादशमी

बेलूड़ मठ, दुर्गापूजा-२०२०

मनाई गयी। दुर्गापूजा का प्रसारण दूरदर्शन बंगला द्वारा किया गया। कोरोना के कारण भक्तों के जाने की मठ में अनुमति नहीं थी, लेकिन लोगों ने अपने घर बैठे ही दूरदर्शन बंगला और यूट्यूब के द्वारा बेलूड़ मठ की पूजा का आनन्द लिया।

रामकृष्ण मिशन के विभिन्न केन्द्रों में दुर्गापूजा आयोजित हुई –

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन, मुम्बई, रामकृष्ण मिशन, बिलासपुर, रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, लखनऊ, रामकृष्ण मिशन वेदान्त विवेकानन्द सोसाइटी, जमशेदपुर, रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना, रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी, रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन आश्रम, मालदा, मातृमन्दिर और रामकृष्ण मिशन सारदा सेवाश्रम, जयरामवाटी, कामारपुकुर, रामकृष्ण मठ, आँटपुर, रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन, ढाका, बाँग्लादेश।

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के विभिन्न केन्द्रों द्वारा विभिन्न स्थानों पर सेवा-कार्य किये गये –

रामकृष्ण सेन्टर ऑफ साउथ अफ्रिका, डरबन ने अपने उप केन्द्रों के साथ मिलकर सितम्बर माह में ४३३ परिवारों के बीच ८६६ किलो चावल, ४३३ किलो दाल, ४३३ किलो चीनी, सेम, ४३३ किलो मर्क भोज, २७ किलो मैकरौनी, ४३ किलो विभिन्न मसाले, ४३३ किलो नमक, ३२५ लीटर मीठा तेल, ४३३ लीटर दूध, ४३३ किलो चीनी, ४३३ पैकेट टी बैग, ४३३ जैम बोतल एवं ४३३ साबुन टिकिया का वितरण किया। केन्द्र ने डरबन के एक बाल चिकित्सालय में १०० टोकरियों में सामग्री वितरित की, जिसमें प्रत्येक टोकरी में २५ किलो अनाज, १०० किलो चीनी सेम एवं २५ किलो पास्ता उपलब्ध था।

विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर में वेबीनार का आयोजन हुआ

विवेकानन्द मानव प्रकर्ष संस्थान, विवेकानन्द विद्यापीठ, रायपुर के द्वारा सोमवार, २५ अक्टूबर, २०२० को विजयादशमी के पावन उपलक्ष्य में 'श्रीराम-तत्त्व-चिन्तन' विषय पर एक वेबीनार का आयोजन किया गया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि थे छत्तीसगढ़ राज्य के मुख्यमन्त्री श्री भूपेश बघेल जी। वक्ता थे – सुप्रसिद्ध रामकथावाचक सन्त श्री मैथिलीशरण 'भाईजी', ऋषिकेश (उत्तराखण्ड), जिन्होंने 'श्रीराम का सौन्दर्य' विषय पर व्याख्यान दिया और दूसरे वक्ता थे पं. उमाशंकर 'व्यास' जी, बरेली (उत्तर प्रदेश), जिन्होंने 'श्रीराम का औदार्य' पर व्याख्यान दिया।

बाढ़-राहत कार्य किया गया

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, मुजफ्फरपुर ने ५ और ६ अगस्त को मुजफ्फरपुर जिला में १५०० थाली खीचड़ी प्रसाद वितरित किया।

रामकृष्ण आश्रम, राजकोट ने २४ अगस्त को राजकोट के कुछ झोपड़पट्टी बस्तियों में १००० थाली खीचड़ी वितरित किया।

रामकृष्ण मठ, कोइलांडी, केरला ने १२ अगस्त को कोइलांडी के २०० परिवारों में १००० किलो चावल, ४०० किलो आटा, ४०० किलो दाल वितरित किया।